Registered under Act XX of 1847.

मुद्राराक्षस

नाटक

विशाखदत्त के संस्कृत ग्रन्थ का भाषानुवाद

राजनीति का अपूर्व आदर्श

भारतभूषण भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र रचित.

क्षत्रियपत्रिका सम्पादक ॰ म॰ कु॰ बाबू रामदीनसिंह संकलित.

बाबू रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.

ह,० सं०, २८— १९१३

बांकीपुर—खड्गविलास प्रेस में—मुद्रित।

पांचवींवार।

बाबू हरिप्रसाद
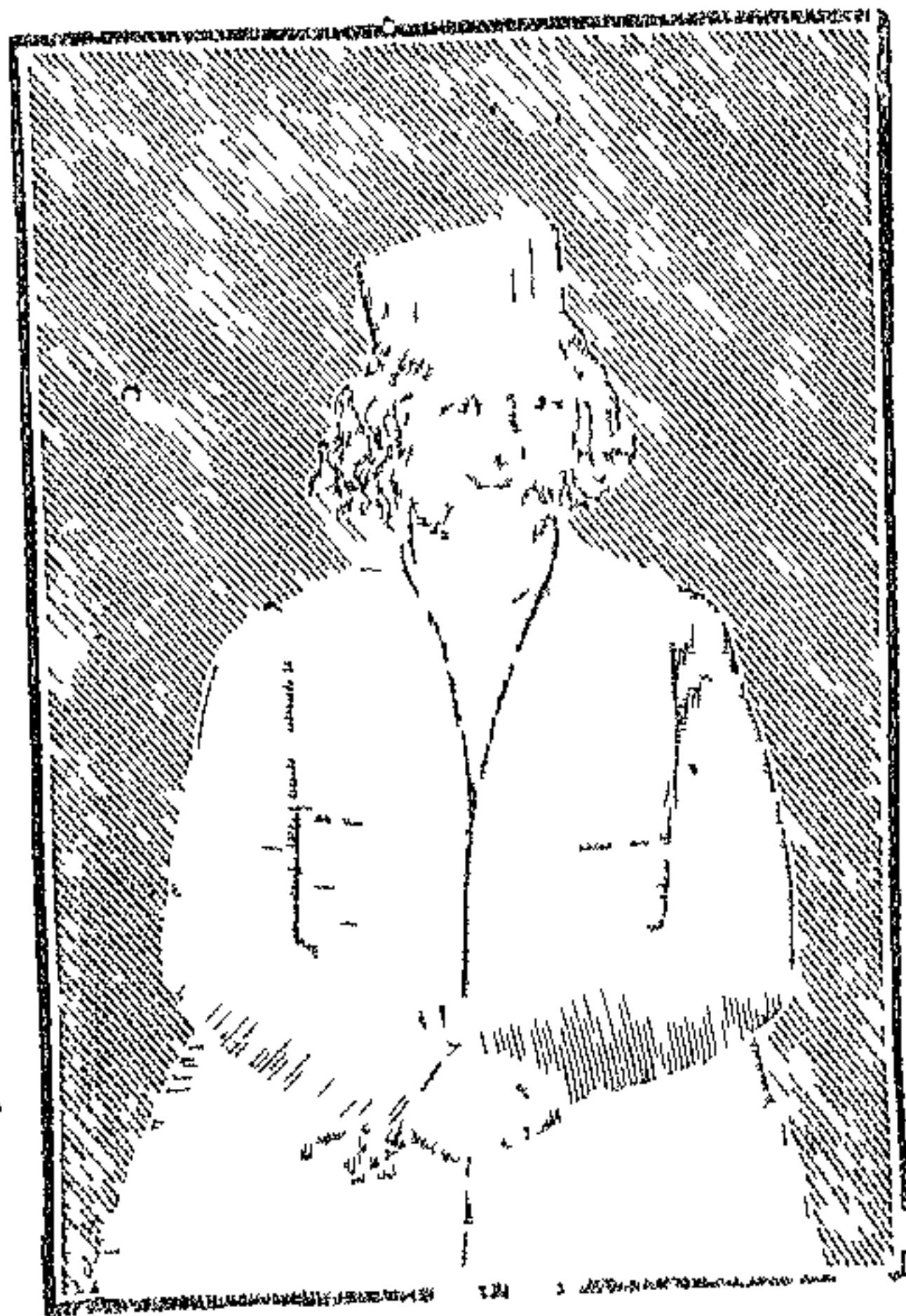
परम श्रद्धास्पद

श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद बहादुर सी० एस० आई०

के

चरण कमलों में

केवल उन्हीं के उत्साहदान से

उन के

वात्सल्यभाजन छात्रद्वारा बना हुआ

यह ग्रन्थ

सादर समर्पित हुआ।

महानन्द के दो मंत्री थे। मुख्य का नाम शकटार और दूसरे का राक्षस था। शकटार शूद्र और राक्षस * ब्राह्मण था। ये दोनों अत्यन्त बुद्धिमान और महा प्रतिभासम्पन्न थे। केवल भेद इतना था कि राक्षस धीर और गम्भीर था, उस के विरुद्ध शकटार अत्यन्त उद्धतस्वभाव था। यहां तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता। महानन्द भी अत्यन्त उग्रस्वभाव असहनशील और क्रोधी था। जिस का परिणाम यह हुआ कि महानन्द ने अन्त को शकटार को क्रोधान्ध हो कर बड़े निबिड़ बन्दीखाने में कैद किया और सपरिवार उस के भोजन को केवल दो सेर सत्तू देता था †।

---

* बृहत्कथा में राक्षस मन्त्री का नाम कहीं नहीं है, केवल बररुचि से एक सच्चे राक्षस से मैत्री की कथा यों लिखी है। एक बड़ा प्रचण्ड राक्षस पाटलीपुत्र में फिरा करता था। वह एक रात्रि बररुचि से मिला और पूछा कि "इस नगर में कौन स्त्री सुन्दर है?" बररुचि ने उत्तर दिया "जो जिस को रुचै वही सुन्दर है।" इस पर प्रसन्न हो कर राक्षस ने उस से मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करैंगे और फिर सदा राजकाज में ध्यान में प्रत्यक्ष हो कर राक्षस बररुचि की सहायता करता।

† बृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है। बररुचि, व्याडि और इन्द्रदत्त तीनों को गुरुदक्षिणा देने के हेतु करोड़ों रुपये के सोने की आवश्यकता हुई। तब इन लोगों ने सलाह किया कि नन्द (सत्यनन्द) राजा के पास चल कर उस से सोना लें। उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था, ये तीनों ब्राह्मण वहां गये, किन्तु संयोग से उन्हीं दिनों राजा मर गया। तब आपस में सलाह कर के इन्द्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़ कर राजा के शरीर में चला गया, जिस से राजा फिर जी उठा। तभी से उस का नाम योगानन्द हुआ। योगानन्द ने बररुचि को करोड़ रुपये देने की आज्ञा

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का अधिकार भोगा था, इस से यह अनादर उस के पक्ष में अत्यन्त दुखदाई हुआ। नित्य सत्तू का बरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नन्दवंश के जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह यह सत्तू खाय। मन्त्री के इस वाक्य से दुखित हो कर उस के परिवार का कोई भी सत्तू न खाता। अन्त में कारागार की पीड़ा से एक एक कर के उस के परिवार के सब लोग मर गये।

एक तो अपमान का दुख, दूसरे कुटुम्ब का नाश, इन दोनों कारणों से शकटार अत्यन्त तनछीन मनमलीन दीन हीन हो गया। किन्तु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किये और थोड़े बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रक्खा। रात दिन इसी सोच में रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा।

कहते हैं कि राजा महानंद एक दिन हाथ मुंह धोकर हंसते हंसते जनाने में आ रहे थे। विचक्षणा नाम की एक

किया। शकटार बड़ा बुद्धिमान था; उस ने सोचा कि राजा का मर कर जीना और एकबारगी एक अपरिचित को करोड़ रुपया देना इस में हो न हो कोई भेद है। ऐसा न हो कि अपना काम कर के फिर राजा का शरीर छोड़ कर यह चला जाय। यह सोच कर शकटार ने राज्य भर में जितने मुरदे मिले उन को जलवा दिया, उसी में इन्द्रदत्त का भी शरीर जल गया। जब व्याडि ने यह वृत्तान्त योगानन्द से कहा तो यह सुन कर पहिले तो दुखी हुआ फिर बररुचि को अपना मन्त्री बनाया। परन्तु अन्त में शकटार की उग्रता से सन्तप्त हो कर उस को अन्धे कूंए में कैद किया। * बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल नाम लिखा है।

दासी, जो राजा के मुंह लगने के कारण कुछ धृष्ट हो गई थी, राजा को हंसता देख कर हंस पड़ी। राजा उस की ढिठाई से बहुत चिढ़े और उस से पूछा 'तू क्यों हंसी?' उस ने उत्तर दिया "जिस बात पर महाराज हंसे उसी पर मैं भी हंसी।" महानंद इस बात पर और भी चिढ़ा और कहा कि अभी बतला मैं क्यों हंसा, नहीं तो तुझ को प्राणदण्ड होगा। दासी से और कुछ उपाय न बन पड़ा और उस ने घबड़ा कर इस के उत्तर देने को एक महीने की मुहलत चाही। राजा ने कहा "आज से ठीक एक महीने के भीतर जो उत्तर न देगी तो कभी तेरे प्राण न बचैंगे।"

विचक्षणा के प्राण उस समय तो बच गये, परन्तु महीने के जितने दिन बीतते थे मारे चिन्ता के वह मरी जाती थी। कुछ सोच विचार कर वह एक दिन कुछ खाने पीने की सामग्री लेकर शकटार के पास गई और रो रो कर अपनी सब विपत्ति कहने लगी। मन्त्री ने कुछ देर तक सोच कर उस अवसर की सब घटना पूछी और हंस कर कहा "मैं जान गया राजा क्यों हंसे थे। कुल्ला करने के समय पानी के छोटे छींटों पर राजा को बटबीज की याद आई और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े बड़ के वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अन्तर्गत हैं। किन्तु भूमि पर पड़ते ही वह जल के छींटे नाश हो गये। राजा अपनी इसी भावना को याद कर के हंसते थे।" विचक्षणा ने हाथ जोड़ कर कहा "यदि आप के अनुमान से मेरे प्राण की रक्षा होगी तो मैं जिस तरह से होगा, आप को कैदखाने से छुड़ाऊंगी और जन्म भर आप की दासी हो कर रहूंगी।"

राजा ने विचक्षणा से एक दिन फिर हंसने का कारण पूछा, तो विचक्षणा ने शकटार से जैसा सुना था कह सुनाया।

राजा ने चमत्कृत हो कर पूछा "सच बता, तुझ से यह भेद किस ने कहा ?" दासी ने शकटार का सब वृत्त कहा और राजा को शकटार की बुद्धि की प्रशंसा करते देख अवसर पाकर उस के मुक्त होने की भी प्रार्थना की। राजा ने शकटार को बन्दी से छुड़ा कर राक्षस के नीचे मन्त्री बना कर रक्खा।

ऐसे अवसर पर राजा लोग बहुत चूक जाते हैं। पहिले तो किसी की अत्यन्त प्रतिष्ठा बढ़ानी ही नीतिविरुद्ध है। यदि संयोग से बढ़ जाय तो उस की बहुत सी बातों को तरह देकर टालना चाहिये और जो कदाचित् बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य का राजा अनादर करै तो उस की जड़ काट कर छोड़े, फिर उस का कभी विश्वास न करै। प्रायः अमीर लोग पहले तो मुसाहिब या कारिन्दों को बेतरह सिर चढ़ाते हैं और फिर छोटी छोटी बातों पर उन की प्रतिष्ठा हीन कर देते हैं। इसी से ऐसे लोग राजाओं के प्राण के गांहक हो जाते हैं और अन्त में नन्द की भांति उन का सर्वनाश होता है।

शकटार यद्यपि बन्दीखाने से छूटा और छोटा मन्त्री भी हुआ, किन्तु अपनी अप्रतिष्ठा और परिवार के नाश का शोक उस के चित्त में सदा पहिले ही सा जागता रहा। रात दिन वह यही सोचता कि किस उपाय से ऐसे अव्यवस्थित-चित्त उद्धत राजा का नाश करके अपना बदला ले। एक दिन घोड़े पर वह हवा खाने जाता था। नगर के बाहर एक स्थान पर देखता है कि एक काला सा ब्राह्मण अपनी कुटी के सामने मार्ग की कुशा उखाड़ उखाड़ कर उस की जड़ में मट्ठा डालता जाता है। पसीने से लथपथ है, परन्तु कुछ भी शरीर की ओर ध्यान नहीं देता। चारों ओर कुशा के बड़े

ढेर लगे हुए हैं। शकटार ने आश्चर्य से ब्राह्मण से इस श्रम का कारण पूछा। उस ने कहा "मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है। मैं ब्रह्मचर्य्य में नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायन आदि संसार की उपयोगी सब विद्या पढ़ कर विवाह की इच्छा से नगर की ओर आया था, किन्तु कुश गड़ जाने से मेरे मनोरथ में विघ्न हुआ, इस से जब तक इन बाधक कुशाओं का सर्वनाश न कर लूंगा और काम न करूंगा। मट्ठा इस वास्ते इन की जड़ में देता हूं जिस से पृथ्वी के भीतर इन का मूल भी भस्म हो जाय।"

शकटार के जी में यह ध्यान आया कि ऐसा पक्का ब्राह्मण जो किसी प्रकार राजा से क्रुद्ध हो जाय तो उस का जड़ से नाश करके छोड़े। यह सोच कर उस ने चाणक्य से कहा कि जो आप नगर में चल कर पाठशाला स्थापित करें तो अपने को मैं बड़ा अनुगृहीत समझूं। मैं इस के बदले बेलदार लगा कर यहां की सब कुशाओं को खुदवा डालूंगा। चाणक्य इस पर सम्मत हुआ और नगर में आकर एक पाठशाला स्थापित की। बहुत से विद्यार्थी लोग पढ़ने आने लगे और पाठशाला बड़े धूमधाम से चल निकली।

अब शकटार इस सोच में हुआ कि चाणक्य से राजा से किस चाल से बिगाड़ हो। एक दिन राजा के घर में श्राद्ध था, उस अवसर को शकटार ने अपने मनोरथ सिद्ध होने का अच्छा समय सोच कर चाणक्य को श्राद्ध का न्योता दे कर अपने साथ ले आया और श्राद्ध के आसन पर बिठला कर चला गया। क्योंकि वह जानता था कि चाणक्य का रंग काला, आंखें लाल और दांत काले होने के कारण नन्द उस को आसन पर से उठा देगा, जिस से चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध हो कर उस का सर्वनाश करेगा।

और ठीक ऐसा ही हुआ—जब राक्षस के साथ नन्द श्राद्धशाला में आया और एक अनिमंत्रित ब्राह्मण को आसन पर बैठा हुआ और श्राद्ध के अयोग्य देखा तो चिढ़ कर आज्ञा दिया कि इस को बाल पकड़ कर यहां से निकाल दो। इस अपमान से ठोकर खाए हुए सर्प की भांति अत्यन्त क्रोधित हो कर शिखा खोल कर चाणक्य ने सब के सामने प्रतिज्ञा की कि जब तक इस दुष्ट राजा का सत्यानाश न कर लूंगा तब तक शिखा न बांधूंगा। यह प्रतिज्ञा कर के बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया।

शकटार अवसर पाकर चाणक्य को मार्ग में से अपने घर ले आया और राजा की अनेक निन्दा कर के उस का क्रोध और भी बढ़ाया और अपनी सब दुर्दशा कह कर नन्द के नाश में सहायता करने की प्रतिज्ञा किया। चाणक्य ने कहा कि जब तक हम राजा के घर का भीतरी हाल न जानें कोई उपाय नहीं सोच सकते। शकटार ने इस विषय में विचक्षणा की सहायता देने का वृत्तान्त कहा और रात को एकान्त में बुला कर चाणक्य के सामने उस से सब बात का करार ले लिया।

महानन्द को नौ पुत्र थे। आठ विवाहिता रानी से और एक चंद्रगुप्त मुरा नाम की एक नाइन स्त्री से। इसी से चंद्रगुप्त को मौर्य और वृषल भी कहते हैं। चन्द्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान था इसी से और आठो भाई इस से भीतरी द्वेष रखते थे। चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी की बहुत सी कहानियां हैं। कहते हैं कि एक बेर रूम के बादशाह ने महानन्द के पास एक कृत्रिम सिंह लोहे की जाली के पिंजड़े में बन्द करके भेजा और कहला दिया कि पिंजड़ा टूटने न पावे और सिंह इस में से निकल जाय। महानन्द और उस के आठ औरस

पुत्रों ने इस को बहुत कुछ सोचा, परन्तु बुद्धि ने कुछ काम न किया। चन्द्रगुप्त ने विचारा कि यह सिंह अवश्य किसी ऐसे पदार्थ का बना होगा जो या तो पानी से या आग से गल जाय, यह सोच कर पहिले उस ने उस पिंजड़े को पानी के कुण्ड में रक्खा और जब वह पानी से न गला तो उस पिंजड़े के चारो तरफ़ आग बलवाई, जिस की गर्मी से वह सिंह, जो लाह और राल का बना था, गल गया। एक बेर ऐसे ही किसी बादशाह ने एक अंगीठी में दहकती हुई आग * एक बोरा

---

* दहकती आग की कथा "जरासन्धवधमहाकाव्य" में लिखा है कि जरासन्ध ने उग्रसेन के पास अंगीठी भेजी थी, शायद उसी से यह कथा निकाली गई हो।

सवैया—रूप की रूपनिधान अनूप अंगीठी नई गढ़ि मोल मंगाई।
ता मधि पावकपुंज धर्यो गिरिधारन जामें प्रभा अधिकाई॥
तेज सों ताके ललाई भई रज में मिली आसु सबै रजताई।
मानो प्रबाल की थाल बनाय कै लाल की रास बिसाल लगाई॥१॥
ढांकि कै पावक दूत के हाथ दै बात कही इहि भांति बुझाय कै।
भोज भुआल सभा मंह सन्मुख राखि कै यों कहियो सिर नाय कै॥
याहि पठायो जरासुत नै अवलोकहु नीके अधीरज लाय कै।
पुत्र खपाय कै नाति न पाय कै जीहौ जे पाय कै कौन उपाय कै॥२॥

दोहा—सुनत चार तिहि हाथ लै, गयो भेम दरबार।
वा सम ऐसे कैक सब, जहं बैठे सरदार॥३॥

अडिल्ल—जायजरासुतदूतभमपतिपदपर्यौ। देखिजराऊजगइहियेसंभ्रमभर्यौ।
जगतजरावनद्रव्यपात्रआगे धर्यौ। सोचजराहूवै अभयहालबरननकर्यौ४
सुनिबिहँसेजदुबीरजीतकीचायसों। हंसिबोले गोबिन्द कहहु यह रायसों॥
उचितससुरपन कीन छत्रकुलन्यायसों। चही दमाद सहाय सुताकी हायसों ५

सरसों और एक मीठा फल महानन्द के पास अपने दूत के द्वारा भेज दिया। राजा की सभा का कोई भी मनुष्य इस का आशय न समझ सका, किन्तु चन्द्रगुप्त ने सोच कर कहा कि अंगीठी यह दिखलाने को भेजी है कि मेरा क्रोध अग्नि है और सरसों यह सूचन कराती है कि मेरी सेना असंख्य है और फल भेजने का आशय यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है। इस के उत्तर में चन्द्रगुप्त ने एक घड़ा जल औ एक पिंजड़े में थोड़े से तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा, जिस का आशय यह था कि तुम्हारी सेना कितनी भी असंख्य क्यों न हो हमारे वीर उस को भक्षण करने में समर्थ हैं और तुम्हारा क्रोध हमारी नीति से सहज ही बुझाया जा सकता है और हमारी मित्रता सदा अमूल्य और एकरस है। ऐसे ही तीन पुतलीवाली कहानी भी इसी के साथ प्रसिद्ध है। इसी बुद्धिमानी के कारण चन्द्रगुप्त से उस के भाई लोग बुरा मानते थे और महानन्द भी अपने औरस पुत्रों का पक्ष कर के इस से कुढ़ता था। यह यद्यपि शूद्रा के गर्भ से था, परन्तु ज्येष्ठ होने के कारण अपने को राज का भागी समझता था और इसी से इस का राजपरिवार से पूर्ण वैमनस्य था। चाणक्य और शकटार ने इसी से निश्चय किया कि हम लोग चन्द्रगुप्त को राज का लोभ देकर अपनी ओर मिला लें और नन्दों का नाश कर के इसी को राजा बनावें।

सोरठा—इमि कहि दूत गहि चाग, आप आप सिरि मैं दियो।
तुरतहि गयो बुझाय, ज्ञान पाय मन भ्रांति जिमि ॥६॥
बिदा कियो नृप दूत, उर मैं सर को शंक करि।
निरखि बृहदरथ पूत, सबन शहित कोप्यो अतिहि ॥७॥

यह सब सलाह पक्की हो जाने के पीछे चाणक्य तो अपनी पुरानी कुटी में चला गया और शकटार ने चन्द्रगुप्त और विचक्षणा को तब तक सिखा पढ़ा कर पक्का कर के अपनी ओर फोड़ लिया। चाणक्य ने कुटी में जा कर हलाहल विष मिले हुए कुछ ऐसे पकवान तैयार किये जो परीक्षा करने में न पकड़े जायं, किन्तु खाते ही प्राण नाश हो जाय। विचक्षणा ने किसी प्रकार से महानन्द को पुत्रों समेत यह पकवान खिला दिया, जिस से बिचारे सब के सब एक साथ परमधाम को सिधारे *।

* भारतवर्ष की कथाओं में लिखा है कि चाणक्य ने अभिचार से मारण का प्रयोग कर के इन सभों को मार डाला। विचक्षणा ने उस अभिचार का निर्माल्य किसी प्रकार इन लोगों के अंग में छुला दिया था। किन्तु वर्तमान काल के विद्वान लोग सोचते हैं कि उस निर्माल्य में मन्त्र का बल नहीं था, चाणक्य ने कुछ औषधि ऐसे विषमिश्रित बनाये थे कि जिन के भोजन वा स्पर्श से मनुष्य का सद्यः नाश हो जाय। भट्ट सोमदेव के कथा सरित्सागर के पीठ-लम्ब के चौथे तरंग में लिखा है " योगानन्द को ऊंची अवस्था में नये प्रकार की कामवासना उत्पन्न हुई। बररुचि ने यह सोच कर कि राजा को तो भोगविलास से छुट्टी ही नहीं है, इस से राजकाज का काम शकटार निकाला जाय तो अच्छी तरह से चले। यह विचार कर और राजा से पूछ कर शकटार को अन्धे कूंए से निकाल कर बररुचि ने मन्त्रीपद पर नियत किया। एक दिन शिकार खेलने में गंगा में राजा ने अपनी पांचो उंगली की परछाईं बररुचि को दिखलाया। बररुचि ने अपनी दो उंगलियों की परछाईं ऊपर से दिखाई, जिस से राजा के हाथ की परछाईं छिप गई। राजा ने इन संज्ञाओं का कारण पूछा। बररुचि ने कहा आप का यह आशय था कि पांच मनुष्य मिल कर सब कार्य्य साध सकते हैं। मैं ने यह कहा कि जो दो चित्त एक हो जायं तो पांच का बल व्यर्थ है। इस बात पर राजा ने बररुचि की बड़ी स्तुति किया। एक दिन राजा ने अपनी रानी को एक ब्राह्मण से खिड़की

चन्द्रगुप्त इस समय चाणक्य के साथ था। शकटार अपने दुःख और पापों से सन्तप्त हो कर निविड़ बन में चला गया और अनसन कर के प्राण त्याग किये। कोई कोई इतिहासलेखक कहते हैं कि चाणक्य ने अपने हाथ से

में से बात करते देख कर उस ब्राह्मण को मारने की आज्ञा किया, किन्तु अनेक कारणों से वह बच गया। बररुचि ने कहा कि आप के सब महल की यही दशा है और अनेक स्त्रीवेषधारी पुरुष महल में रहते हैं और उन सबों को पकड़ कर दिखला दिया और इसी से उस ब्राह्मण के प्राण बचे। एक दिन योगानन्द की रानी के एक चित्र में, जो महल में लगा हुआ था, बररुचि ने जांघ में तिल बना दिया। योगानन्द को गुप्त स्थान में बररुचि के तिल बनाने से उस पर भी सन्देह हुआ और शकटार को आज्ञा दिया कि तुम बररुचि को आज ही रात को मार डालो। शकटार ने उस को अपने घर में छिपा रक्खा और किसी और को उस के बदले मार कर उस का मारना प्रगट किया। एक बेर राजा का पुत्र हिरण्यगुप्त जंगल में शिकार खेलने गया था, वहां रात को सिंह के भय से एक पेड़ पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर एक भालू था, किन्तु इस ने उस को अभय दिया। इन दोनों में यह बात ठहरी कि आधी रात तक कुंवर सोवैं भालू पहरा दे, फिर भालू सोवै कुंवर पहरा दे। भालू ने अपना मित्रधर्म्म निबाहा और सिंह के बहकाने पर भी कुंअर की रक्षा किया। किन्तु अपनी पारी में कुंवर ने सिंह के बहकाने से भालू को ढकेलना चाहा, जिस पर उस ने जाग कर मित्रता के कारण कुंवर को मारा तो नहीं किन्तु कान में मूत दिया, जिस से कुंवर गूंगा और बहिरा हो गया। राजा को बेटे की इस दुर्दशा पर बड़ा सोच हुआ और कहा कि बररुचि जीता होता तो इस समय उपाय सोचता। शकटार ने यह अवसर समझ कर राजा से कहा कि बररुचि जीता है और लाकर राजा के सामने खड़ा कर दिया। बररुचि ने कहा कुंवर ने मित्रद्रोह किया है उस का फल है। यह वृत्त कह कर उस को उपाय से अच्छा किया। राजा ने पूछा तुम ने यह सब वृत्तान्त किस तरह जाना? बररुचि

शस्त्रद्वारा नन्द का बध किया और फिर क्रम से उस के पुत्रों को भी मारा, किन्तु इस विषय का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। चाहे जिस प्रकार से हो चाणक्य ने नन्दों का नाश किया, किन्तु केवल पुत्र सहित राजा के मारने ही से वह चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर न बैठा सका, इस से अपने अन्तरंग मित्र जीवसिद्धि को क्षपणक के वेष में राक्षस के पास छोड़-कर आप राजा लोगों से सहायता लेने की इच्छा से विदेश निकला। अन्त में अफ़गानिस्तान वा उस के उत्तर ओर के निवासी पर्वतक नामक लोभपरतन्त्र एक राजा से मिल-कर और उस को जीतने के पीछे मगध राज्य का आधा भाग देने के नियम पर उस को पटने पर चढ़ा लाया। पर्व-तक के भाई का नाम वैरोधक * और पुत्र का मलयकेतु था। और भी पांच म्लेच्छ राजाओं को पर्वतक अपने सहाय को लाया था।

इधर राक्षस मन्त्री राजा के मरने से दुःखी होकर उस के भाई सर्वार्थसिद्धि को सिंहासन पर बैठा कर राजकाज चलाने लगा। चाणक्य ने पर्वतक की सैना ले कर कुसुमपुर को चारो ओर से घेर लिया। पन्द्रह दिन तक घोरतर युद्ध

ने कहा योगबल से, जैसे रानी का तिल। (ठीक यही कहानी राजाभोज उस की रानी भानुमती और उस के पुत्र और कालीदास की भी प्रसिद्ध है) यह सब कह कर और उदास हो कर बररुचि जंगल में चला गया। बररुचि से शकटार ने राजा के मारने को कहा था, किन्तु वह धर्मिष्ठ था इस से सम्मत न हुआ। बररुचि के चले जाने पर शकटार ने अवसर पा कर चाणक्य द्वारा कृत्या से नन्द को मारा।

* लिखी पुस्तकों में यह नाम, वैरोधक, विरोधक, वैरोचक, वैबोधक, विरोध, वैरोध इत्यादि कई चाल से लिखा है।

हुआ। राक्षस की सेना और नागरिक लोग लड़ते लड़ते शिथिल हो गए; इसी समय में गुप्त रीति से जीवसिद्धि के बहकाने से राजा सर्वार्थसिद्धि बैरागी होकर वन में चला गया, इस कुसमय में राजा के चले जाने से राक्षस और भी उदास हुआ। चन्दनदास नामक एक बड़े धनी जौहरी के घर में अपने कुटुम्ब को छोड़ कर और शकटदास कायस्थ तथा अनेक राजनीति जाननेवाले विश्वासपात्र मित्रों को और कई आवश्यक काम सौंप कर राजा सर्वार्थसिद्धि के फेर लाने को आप तपोवन की ओर गया।

चाणक्य ने जीवसिद्धिद्वारा यह सब सुन कर राक्षस के पहुंचने के पहले ही अपने मनुष्यों से राजा सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला। राक्षस जब तपोवन में पहुंचा और सर्वार्थ-सिद्धि को मरा देखा तो अत्यन्त उदास होकर वहीं रहने लगा। यद्यपि सर्वार्थसिद्धि के मार डालने से चाणक्य की नन्दकुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, किन्तु उस ने सोचा कि जब तक राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री न होगा तब तक राज्य स्थिर न होगा। वरंच बड़े विनय से तपोवन में राक्षस के पास मन्त्रीत्व स्वीकार करने का सन्देसा भेजा, परन्तु प्रभुभक्त राक्षस ने उस को स्वीकार नहीं किया।

तपोवन में कई दिन रह कर राक्षस ने यह सोचा कि जब तक पर्वतक को हम न फोड़ेंगे काम न चलेगा। यह सोच कर वह पर्वतक के राज्य में गया और वहां उस के बूढ़े मन्त्री से कहा कि चाणक्य बड़ा दगाबाज है, वह आधा राज कभी न देगा, आप राजा को लिखिए वह मुझ से मिलें तो मैं सब राज्य उन को दूं। मन्त्री ने पत्रद्वारा पर्वतक को यह सब वृत्त और राक्षस की नीतिकुशलता लिख भेजा और यह भी लिखा कि मैं अत्यन्त वृद्ध हूं, आगे से मन्त्री का काम

राक्षस को दीजिये। पाटलीपुत्र विजय होने पर भी चाणक्य आधा राज देने में विलम्ब करता है, यह देख कर सहज लोभी पर्वतक ने मन्त्री की बात मान ली और पत्रद्वारा राक्षस को गुप्त रीति से अपना मुख्य अमात्य बना कर इधर ऊपर के चित्त से चाणक्य से मिला रहा।

जीवसिद्धि के द्वारा चाणक्य ने राक्षस का सब हाल जान कर अत्यन्त सावधानता पूर्वक चलना आरम्भ किया। अनेक भाषा जाननेवाले बहुत से धूर्त पुरुषों को वेष बदल बदल कर भेद लेने को चारों ओर नियुक्त किया। चन्द्रगुप्त को राक्षस का कोई गुप्त चर धोखे से किसी प्रकार की हानि न पहुंचावै इस का भी पक्का प्रबन्ध किया और पर्वतक की विश्वासघातकता का बदला लेने के दृढ़ संकल्प से, परन्तु अत्यन्त गुप्त रूप से, उपाय सोचने लगा।

राक्षस ने केवल पर्वतक की सहायता से राज मिलने की आशा छोड़ कर * कुलूत, मलय, काश्मीर, सिन्धु और पारस इन पांच देशों के राजा से सहायता ली। जब इन पांचों देश के राजाओं ने बड़े आदर से राक्षस को सहायता देना स्वीकार किया तो वह तपोबन के निकट फिर से लौट आया और वहां से चन्द्रगुप्त के मारने को एक विषकन्या †

---

* कुलूत देश किलात वा कुल्लू देश।

† विषकन्या शास्त्रों में दो प्रकार की लिखी हैं। एक तो थोड़े से ऐसे बुरे योग हैं कि उस लग्न में उस प्रकार के ग्रहों के समय जो कन्या उत्पन्न हो उस के साथ जिस का विवाह हो वा जो उस का साथ करे वह साथ ही वा शीघ्र ही मर जाता है। दूसरे प्रकार की विषकन्या वैद्यक रीति से बनाई जाती थी। छोटेपन से वरन गर्भ से कन्या को दूध में वा भोजन में थोड़ा २ विष देते देते बड़ी होने पर उस का शरीर ऐसा विषमय हो जाता था कि जो उस का अंगसंग करता वह मर जाता।

भेजी और अपना विश्वासपात्र समझ कर जीवसिद्धि को उस के साथ कर दिया। चाणक्य ने जीवसिद्धिद्वारा यह सब बात जान कर और पर्वतक की धूर्तता और विश्वासघातकता से क्रुद्ध कर प्रगट में इस उपहार को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया और लानेवाले को बहुत सा पुरस्कार देकर बिदा किया। सांझ होने के पीछे धूर्ताधिराज चाणक्य ने इस कन्या को पर्वतक के पास भेज दिया और इन्द्रियलोलुप पर्वतक उसी रात को उस कन्या के संग से मर गया। इधर चाणक्य ने यह सोचा कि मलयकेतु यहां रहेगा तो उस को राज्य का हिस्सा देना पड़ेगा, इस से किसी तरह इस को यहां से भगावें तो काम चले। इस कार्य के हेतु भागुरायण नामक एक प्रतिष्ठित विश्वासपात्र पुरुष को मलयकेतु के पास सिखा पढ़ा कर भेज दिया। उस ने पिछली रात को मलयकेतु से जा कर उस का बड़ा हित बन कर उस से कहा कि आज चाणक्य ने विश्वासघातकता कर के आप के पिता को विषकन्या के प्रयोग से मार डाला और औसर पाकर आप को भी मार डालेगा। मलयकेतु विचारा इस बात के सुनते ही सन्न हो गया और पिता के शयनागार में जाकर देखा तो पर्वतक को बिछौने पर मरा हुआ पाया। इस भयानक दृश्य के देखते ही मुग्ध मलयकेतु के प्राण सूख गये और भागुरायण की सलाह से उस रात को छिप कर वहां से भाग कर अपने राज्य की ओर चला गया। इधर चाणक्य के सिखाये भद्रभट इत्यादि चन्द्रगुप्त के कई बड़े २ अधिकारी प्रगट में राजद्रोही बनकर मलयकेतु और भागुरायण के साथ ही भाग गये।

राक्षस ने मलयकेतु से पर्वतक के मारे जाने का समाचार सुन कर अत्यन्त सोच किया और बड़े आग्रह और

सावधानी से, चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्टसाधन में प्रवृत्त हुआ।

चाणक्य ने कुसुमपुर में दूसरे दिन यह प्रसिद्ध कर दिया कि पर्वतक और चन्द्रगुप्त दोनों समान बन्धु थे, इस से राक्षस ने विषकन्या भेज कर पर्वतक को मार डाला और नगर के लोगों के चित्त पर, जिन को कि यह सब गुप्त अनुसन्धि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।

इस के पीछे चाणक्य और राक्षस के परस्पर नीति की जो चोटें चली हैं उसी का इस नाटक में वर्णन है।
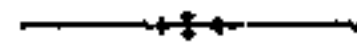
महाकवि विशाखदत्त का बनाया

मुद्राराक्षस नाटक।

स्थान रङ्गभूमि।

रंगशाला में नान्दी मंगलपाठ करता है।

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ॥१॥ *
'कौन है सीस पै' 'चन्द्रकला' कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी'।
'हां यही नाम है भूल गई किमि जानत हू तुम प्रानपियारी' ॥
'नारिहि पूछत चन्द्रहि नाहिं' 'कहै बिजया जदि चन्द्र लबारी'।
यों गिरिजै छलि गंग छिपावत ईस हरौ सब पीर तुम्हारी ॥२॥
पाद प्रहार सों जाइ पताल न भूमि सबै तनु बोझ के मारे।
हाथ नचाइबे सों नभ मैं इत के उत टूटि परैं नहिं तारे ॥
देखन सो जरि जाहिं न लोक न खोलत नैन कृपा उर धारे।
यों थल के बिनु कष्ट सों नाचत शर्व हरौ दुख सर्व तुम्हारे ॥३॥

---

* संस्कृत का मंगलाचरण :—

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला, किन्नु नामैतदस्याः
नामैवास्यास्तदेतत्; परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः
नारीं पृच्छामि नेन्दुं; कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु-
र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः ॥ १ ॥

नान्दी पाठ के अनन्तर * ।

सूत्रधार ।—बस ! बहुत मत बढ़ाओ, सुनो आज मुझे सभासदों की आज्ञा है कि सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त कवि का बनाया मुद्राराक्षस

और भी

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने-रक्षतः स्वैरपातै-
रसकोचेनैव दोर्ष्णां मुहुरभिनयतः सर्व्वलोकातिगानाम् ।
दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्रां ज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते-
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्यम् ॥ २ ॥

अर्थ ।

'यह आप के सिर पर कौन बड़भागिनी है ?' 'शशि कला है०' 'क्या इस का यही नाम है ?' 'हां यही तो, तुम तो जानती हो फिर क्यों भूल गईं ?' 'अजी हम स्त्री को पूछती हैं, चन्द्रमा को नहीं पूछती' 'अच्छा चन्द्र की बात का विश्वास न हो तो अपनी सखी विजया से पूछ लो ।' योंहीं बात बना कर गंगा जी को छिपा कर देवी पार्वती को ठगने की इच्छा करनेवाले महादेव जी का छल तुमलोगों की रक्षा करै ।

दूसरा ।

पृथ्वी झुकने के डर से इच्छानुसार पैर का बोझ नहीं दे सकते, ऊपर के लोकों के इधर उधर हो जाने के भय से हाथ भी यथेच्छ नहीं फेंक सकते, और उस के अग्निकण से जल जायंगे इसी ध्यान से किसी की ओर भर दृष्टि देख भी नहीं सकते, इस से आधार के संकोच से महादेव जी का कष्ट से नृत्य करना तुम्हारी रक्षा करे ।

* नाटकों में पहले मंगलाचरण करके तब खेल आरम्भ करते हैं । इस मंगलाचरण को नाटकशास्त्र में नान्दी कहते है । किसी का मत है कि नान्दी पहले ब्राह्मण पढ़ता है, कोई कहता है सूत्रधार ही, और किसी का मत है कि परदे के भीतर से नान्दी पढ़ी या गाई जाय ।

नाटक खेलो। सच है! जो सभा काव्य के गुण और दोष को सब भांति समझती है उस के सामने खेलने में मेरा भी चित्त संतुष्ट होता है।

उपजैं आछे खेत मैं, मूरखहू के धान।
सघन होन मैं धान के, चहिय न गुनी किसान॥४॥

तो अब मैं घर से सुघर घरनी को बुलाकर कुछ गाने बजाने का ढंग जमाऊं (घूम कर) यही मेरा घर है, चलूं। (आगे बढ़ कर) अहा! आज तो मेरे घर में कोई उत्सव जान पड़ता है, क्योंकि घरवाले सब अपने अपने काम में चूर हो रहे हैं।

पीसत कोऊ सुगन्ध कोऊ जल भरि कै लावत।
कोऊ बैठि कै रंग रंग की माल बनावत॥
कहुं तिय गन हुंकार सहित अति श्रवन सोहावत।
होत मुशल को शब्द सुखद जिय को सुनि भावत॥ ५॥

जो हो घर से स्त्री को बुला कर पूछ लेता हूं (नेपथ्य की ओर)

री गुनवारी सब उपाय की जाननवारी।
घर की राखनवारी सब कुछ साधनवारी॥
मो गृह नीति सरूप काज सब करन संवारी।
वेगि आउरी नटी बिलम्ब न करु सुनि प्यारी॥

(नटी आती है)

नटी।—आर्य्यपुत्र! * मैं आई, अनुग्रहपूर्वक कुछ आज्ञा दीजिये।

सूत्र०।—प्यारी, आज्ञा पीछे दी जायगी, पहिले यह बता कि आज ब्राह्मणों का न्यौता कर के तुम ने इन कुटुम्ब के लोगों पर क्यों अनुग्रह किया है? या आप ही से आज

* संस्कृत मुहाविरे में पति को स्त्रियां आर्य्यपुत्र कह कर पुकारती हैं।

अतिथि लोगों ने कृपा किया है कि ऐसे धूम से रसोई चढ़ रही है ?

नटी ।—आर्य्य ! मैं ने ब्राह्मणों को न्यौता दिया है ।

सूत्र० ।—क्यों ! किस निमित्त से ?

नटी ।—चन्द्रग्रहण लगनेवाला है ।

सूत्र० ।—कौन कहता है ?

नटी ।—नगर के लोगों के मुंह सुना है ।

सूत्र० ।—प्यारी मैं ने ज्योतिःशास्त्र के चौंसठों * अंगों में बड़ा परिश्रम किया है । जो हो रसोई तो होने दो † पर आज तो गहन है यह तो किसी ने तुझे धोखा ही दिया है क्योंकि—

चन्द्र ‡ बिम्ब पूरन भए क्रूरकेतु ‖ हठ दाप ।

---

* होरा मुहूर्त्त जातक ताजक रमल इत्यादि ।

† अर्थात् ग्रहण का योग तो कदापि नहीं है । खैर रसोई हो ।

‖ केतु अर्थात् राक्षस मन्त्री । राक्षस मन्त्री ब्राह्मण था और केवल नाम उस का राक्षस था किन्तु गुण उस में देवताओं के थे ।

केतु ग्रह का और हाल पुस्तक के अंत में लिखा है ।

‡ इस श्लोक का यथार्थ तात्पर्य्य जानने को काशी संस्कृत विद्यालय के अध्यक्ष जगद्विख्यात पण्डितवर बापूदेव शास्त्री को मैं ने पत्र लिखा । क्योंकि टीकाकारों ने 'चन्द्रमा पूर्ण होने पर' यही अर्थ किया है और इस अर्थ से मेरा जी नहीं भरा । कारण यह कि पूर्ण चन्द्र में तो ग्रहण लगता ही है इस में विशेष क्या हुआ । शास्त्री जी ने जो उत्तर दिया है वह यहां प्रकाशित होता है ।

श्रीयुत बाबू साहिब को बापूदेव के कोटिशः आशीर्वाद, आप ने प्रश्न लिख भेजे उन का संक्षेप से उत्तर लिखता हूं ।

१ सूर्य्य के अस्त हो जाने पर जो रात्रि में अंधकार होता है वही पृथ्वी की छाया है और पृथ्वी गोलाकार है और सूर्य्य से छोटी है इसलिये उस की

बल सों करि हैं ग्रास कह—

(नेपथ्य में)

हैं मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

छाया सूच्याकार शंकु के आकार की होती है और यह आकाश में चन्द्र के भ्रमणमार्ग को लांघ के बहुत दूर तक सदा सूर्य्य से छ राशि के अन्तर पर रहती है और पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा भी सूर्य्य से छ राशि के अन्तर पर रहता है। इस लिए जिस पूर्णिमा में चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है अर्थात् पृथ्वी की छाया चन्द्रमा के बिम्ब पर पड़ती है तभी वह चन्द्र का ग्रहण कहलाता है और छाया जो चन्द्रबिम्ब पर देख पड़ती है वही ग्रास कहलाता है। और राहु नामक एक दैत्य प्रसिद्ध है वह चन्द्रग्रहणकाल में पृथ्वी की छाया में प्रवेश करके चन्द्र की और प्रजा को पीड़ा करता है, इसी कारण से लोक में राहुकृत ग्रहण कहलाता है और उस काल में स्नान, दान, जप, होम इत्यादि करने से वह राहुकृतपीड़ा दूर होती है और बहुत पुण्य होता है।

२ पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण होने का कारण ऊपर लिखा ही है और पूर्णिमा में चन्द्रबिम्ब भी संपूर्ण उज्ज्वल होता है तभी चन्द्रग्रहण होता है।

३ जब कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण होता है, इस से पूर्णिमा में चन्द्रमा का और बुध का योग कभी नहीं होता (क्योंकि बुध सर्वदा सूर्य्य के पास रहता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य्य, चन्द्रमा से छ राशि के अन्तर पर रहता है, इस लिये बुध भी उस दिन चन्द्र से दूर ही रहता है) यों बुध के योग में चन्द्रग्रहण कभी नहीं हो सकता। इति शिवम्। संवत् १९३७ ज्येष्ठ शुक्ल १५ मंगल दिने, मंगलं मंगले भूयात्।

शास्त्री जी से एक दिन मुझे इस विषय में फिर वार्त्ता हुई। शास्त्री जी को मैं ने मुद्राराक्षस की पुस्तक भी दिखलाई। इस पर शास्त्री जी ने कहा कि "मुझ को ऐसा मालूम होता है कि यदि उस दिन उपराग का सम्भव होगा तो सूर्य्यग्रहण का होगा।" क्योंकि बुधयोग अमावस्या के पास होता भी है।

सूत्र० ।— जेहि बुध रच्छत आप । ७ ।

नटी ।—आर्य्य ! यह पृथ्वी ही पर से चन्द्रमा को कौन बचाना चाहता है ?

सूत्र० ।—प्यारी, मैं ने भी नहीं लखा, देखो अब फिर से वही पढ़ता हूं और अब्र जब वह फिर बोलेगा तो मैं उस की बोली से पहिचान लूंगा कि कौन है ।

(अहो चन्द्र पूरन भए फिर से पढ़ता है)

पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि राहु चन्द्रमा का ग्रास करता है और केतु सूर्य्य का, और इस श्लोक में केतु का नाम भी है इस से भी सम्भव होता है कि सूर्य्य उपराग रहा हो । तो चाणक्य का कहना भी ठीक हुआ कि केतु हठपूर्व्वक क्यों चन्द्र को ग्रसा चाहता है अर्थात् एक तो चन्द्रग्रहण का दिन नहीं दूसरे केतु का चन्द्रमा ग्रास का विषय नहीं क्योंकि नन्द-वीर्य्यजात होने से चन्द्रगुप्त राक्षस का वध्य नहीं है । इस अवस्था में ' चन्द्र असम्पूर्ण मण्डलं ' चन्द्रमा का अधूरा मण्डल यह अर्थ करना पड़ेगा । तब छन्द में ' चन्द्र बिम्ब पूरन भए ' के स्थान पर ' बिना चन्द्र पूरन भए ' पढ़ना चाहिए ।

बुध का बिम्ब प्राचीन भास्कराचार्य्य के मतानुसार छ कला पन्द्रह विकला के लगभग है परन्तु नवीनों के मत से केवल दश विकला परम है ।

परन्तु इस में कुछ सन्देह नहीं कि यह ग्रह बहुत छोटा है क्योंकि प्राचीनों को इस का ज्ञान बहुत कठिनता से हुआ है, इसी लिए इस का नाम ही बुध, ज्ञ, इत्यादि हो गया । यह पृथ्वी से ६८८३७७ इतने योजन की दूरी पर मध्यम मान से रहता है और सदा सूर्य्य के अनुचर के समान सूर्य्य के पास ही रहता है एक पाद अर्थात् तीन राशि भी सूर्य्य से आगे नहीं जाता । विलसन ने केतु शब्द से मलयकेतु का ग्रहण किया है । इस में भी एक प्रकार का अलकार अच्छा रहता है ।

चमत्कृत बुद्धिसम्पन्न पण्डित सुधाकर जी ने इस विषय में जो लिखा है, वह विचित्र ही है । वह भी प्रकाश किया जाता है—

(नेपथ्य में)

हैं ! मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र० ।—(सुन कर) जाना ।

अरे अहै कौटिल्य

करत अधिक अविचार वह, मिलि मिलि करि हरि चन्द ।
द्विजराजहु विकशित करत, धनि धनि यह हरिचन्द ॥

श्री बाबू साहब को हमारे अनेक आशीर्वाद,

महाशय !

चन्द्रग्रहण का सम्भव भूछाया के कारण प्रति पूर्णिमा के अन्त में होता है और उस समय में केतु और सूर्य्य साथ रहते हैं । परन्तु केतु और सूर्य्य का योग यदि नियत संख्या के अर्थात् पांच राशि सोरह अंश से लेकर छ राशि चौदह अंश के वा ग्यारह राशि सोरह अंश से लेकर बारह राशि चौदह अंश के भीतर होता है तब ग्रहण होता है और यदि योग नियत संख्या के बाहर पड जाता है तब ग्रहण नहीं होता इस लिये सूर्य्य केतु के योग ही के कारण से प्रत्येक पूर्णिमा में ग्रहण नहीं होता । तब

क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम ।
अभिभवतुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः ॥

इस श्लोक का यथार्थ अर्थ यह है कि क्रूरग्रह सूर्य्य केतु के साथ चन्द्रमा के पूर्णमण्डल को न्यून करने की इच्छा करता है परन्तु हे बुध ! योग जो है वही बल से उस चन्द्रमा की रक्षा करता है । यहां बुध शब्द पण्डित के अर्थ में सम्बोधन है, ग्रहवाची कदापि नहीं है । बुध शब्द को ग्रहार्थ में ले जाने से जो जो अर्थ होते हैं वे सब बनौआ हैं । इति ।

सं० १९३८ बैशाख शुक्ल ५

ऊंचे भ्र गुरु बुध कवी, मिलि लरि होते विरूप ।
करत समागम सबहि सों, यह द्विजराज अनूप ॥

आप का

पं० सुधाकर ।

नटी०—(डर नाट्य करती है)

सूत्र०— दुष्ट टेढ़ी मतिवारो।

नन्दवंश जिन सहजहि निज क्रोधानल जारो।

चन्द्रग्रहण को नाम सुनत निज नृप को मानी।

इतही आवत चन्द्रगुप्त पैं कछु भय आनी ॥ ८ ॥

तो अब चलो हम लोग चलैं।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना।

प्रथम अङ्क ।

स्थान—चाणक्य का घर ।

(अपनी खुली शिखा को हाथ से फटकारता हुआ चाणक्य आता है)

चाणक्य ।—बता ! कौन है जो मेरे जीते चन्द्रगुप्त को बल से ग्रसना चाहता है ?

सदा दन्ति के कुम्भ को जो बिदारै ।
ललाई नए चन्द सी जौन धारै ॥
जंभाई समै काल सो जौन बाढ़ै ।
भलो सिंह को दांत सो कौन काढ़ै ॥ ९ ॥

और भी

कालसर्पिणी नन्दकुल, क्रोध धूम सी जौन ।
अबहुं बांधन देत नहिं, अहो शिखा मम कौन ॥१०॥
दहन नन्दकुल बन सहज, अति प्रज्वलित प्रताप ।
को मम क्रोधानल पतँग, भयो चहत अब पाप ॥११॥

शारंगरव ! शारंगरव !

(शिष्य आता है)

शिष्य ।—गुरु जी ! क्या आज्ञा है ?

चाणक्य ।—बेटा ! मैं बैठना चाहता हूं ।

शिष्य ।—महाराज ! इस दालान में बेंत की चटाई पहिले ही से बिछी है, आप विराजिये ।

चाणक्य ।—बेटा ! केवल कार्य्य में तत्परता मुझे व्याकुल करती है न कि और उपाध्यायों के तुल्य शिष्यजन से

दुःशीलता * (बैठ कर आप ही आप) क्या सब लोग यह बात जान गए कि मेरे † नन्दवंश के नाश से क्रुद्ध हो कर राक्षस, पितावध से दुखी मलयकेतु ‡ से मिल कर यवनराज की सहायता लेकर चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई किया चाहता है। (कुछ सोचकर) क्या हुआ जब मैं नन्दवंश की बड़ी प्रतिज्ञा रूपी नदी से पार उतर चुका तब यह बात प्रकाश होने ही से क्या मैं इस को न पूरी कर सकूंगा ? क्योंकि—

दिशि सरिस रिपु रमनी बदन शशि शोक कारिख लाय के।
लै नीति पवनहिं सचिव बिटपन छार डारि जराय कै॥
बिलु पुर निवासी पच्छिगन नृप वंशमूल नसाय कै।
भो शान्ति मम क्रोधाग्नि यह कछु दहन हित नाहिं पाय कै॥१२॥☸

और भी

जिन जनन नैं अति सोच सों नृप भय प्रगट धिक नाहिं कह्यौ।
पै मम अनादर को अतिहि वह सोच जिय जिन के रह्यौ §॥
ते लखहिं आसन सों गिरायो नन्द सहित समाज को।
जिमि सिखर तें बनराज क्रोधि गिरावई गजराज को॥१३॥

सो यद्यपि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूं तौ भी चन्द्रगुप्त के हेतु शस्त्र अब भी धारण करता हूं। देखो मैं ने—

---

* अर्थात् कुछ तुम लोगों पर दुष्टता से नहीं अपने काम की घबड़ाहट से बिछी हुई चटाई नहीं देखी।

† नन्दवंश अर्थात् नवो नन्द, एक नन्द और उस के आठ पुत्र।

‡ पर्वतेश्वर राजा का पुत्र।

☸ अग्नि बिना आधार नहीं जलती।

§ नन्द ने कुरूप होने के कारण चाणक्य को अपने श्राद्ध से निकाल दिया था।

नवनन्दन कौं मूल सहित खोयो छन भर मैं।
चन्द्रगुप्त मैं श्री राखी नलिनी जिमि सर मैं॥
क्रोध प्रीति सों एक नासि कै एक बसायो।
शत्रु मित्र को प्रगट सबन फल लै दिखलायो॥

अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नन्दों के मारने से क्या और चन्द्रगुप्त को राज्य मिलने से ही क्या? (कुछ सोचकर) अहा राक्षस की नन्दवंश में कैसी दृढ़ भक्ति है, जब तक नन्दवंश का कोई भी जीता रहेगा तब तक वह कभी शूद्र का मन्त्री बनना स्वीकार न करैगा, इस से उस के पकड़ने में हम लोगों को निरुद्यम रहना अच्छा नहीं। यही समझ कर तो नन्दवंश का सर्वार्थसिद्धि बिचारा तपोबन में चला गया तौ भी हम ने मार डाला। देखो राक्षस मलयकेतु को मिला कर हमारे बिगाड़ने में यत्न करता ही जाता है (आकाश में देख कर), वाह राक्षस मन्त्री वाह! क्यों न हो! वाह मन्त्रियों में बृहस्पति के समान वाह! तू धन्य है, क्योंकि—

जब लौं रहै सुख राज को तब लौं सबै सेवा करैं।
पुनि राज बिगड़े कौन स्वामी तनिक नहिं चित मैं धरैं॥
जे बिपतिहूं मैं पालि पूरब प्रीति काज सँवारहीं।
ते धन्य नर तुम सारिखे दुरलभ अहैं संसय नहीं॥

इसी से तो हम लोग इतना यत्न करके तुम्हैं मिलाया चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चन्द्रगुप्त के मन्त्री बनो, क्योंकि—

मूरख कातर स्वामिभक्त कछु काम न आवै।
पण्डित हूं बिन भक्ति काज कछु नाहिं बनावै॥
निज स्वारथ की प्रीति करैं ते सब जिमि नारी।
बुद्धि भक्ति दोउ होय तबै सेवक सुखकारी॥

सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूं, यथाशक्ति उसी के मिलाने का यत्न करता रहता हूं। देखो पर्व्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्योंकि सब जानते हैं कि चन्द्रगुप्त और पर्व्वतक मेरे मित्र हैं, तो मैं पर्व्वतक को मार कर चद्रगुप्त का पक्ष निर्बल कर दूंगा ऐसी शंका कोई न करेगा, सब यही कहेंगे कि राक्षस ने विषकन्या-प्रयोग करके चाणक्य के मित्र पर्व्वतक को मार डाला। पर एकान्त में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया है कि तेरे पिता को मैं ने नहीं मारा चाणक्य ही ने मारा, इस से मलयकेतु मुझ से बिगड़ रहा है। जो हो, यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तो भी पकड़ जायगा। पर जो हम मलयकेतु को पकड़ेंगे तो लोग निश्चय कर लेंगे कि अवश्य चाणक्य ही ने अपने मित्र इस के पिता को मारा और अब मित्रपुत्र अर्थात् मलयकेतु को मारना चाहता है। और भी, अनेक देश की भाषा पहिरावा चाल व्यवहार जाननेवाले अनेक वेषधारी बहुत से दूत मैं ने इसी हेतु चारो ओर भेज रक्खे हैं कि वे भेद लेते रहें कि कौन हम लोगों से शत्रुता रखता है, कौन मित्र है। और कुसुमपुर निवासी नन्द के मन्त्री और सम्बन्धियों के ठीक ठीक वृत्तान्त का अन्वेषण हो रहा है, वैसे ही भद्रभटादिकों को बड़े बड़े पद देकर चन्द्रगुप्त के पास रख दिया है और भक्ति की परीक्षा लेकर बहुत से अप्रमादी पुरुष भी शत्रु से रक्षा करने को नियत कर दिए हैं। वैसे ही मेरा सहपाठी मित्र विष्णुशर्म्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्रनीति और चौसठों कला से ज्योतिष शास्त्र में बड़ा प्रवीण है, उसे मैं ने पहिले ही जोगी बना कर नन्दबध की प्रतिज्ञा के अनन्तर ही कुसुमपुर में भेज दिया है, वह वहां नन्द के मन्त्रियों से मित्रता करके विशेष

कर के राक्षस का अपने पर बड़ा विश्वास बढ़ा कर सब काम सिद्ध करेगा, इस से मेरा सब काम बन गया है, परन्तु चन्द्रगुप्त सब राज्य का भार मेरे ही ऊपर रख कर सुख करता है। सच है, जो अपने बल बिना और अनेक दुःखों के भोगे बिना राज्य मिलता है वही सुख देता है। क्योंकि—

अपने बल सों लावहिं, यद्यपि मारि सिकार।
तदपि सुखी नहिं होत हैं, राजा सिंह कुमार ॥१६॥

(* जम का चित्र हाथ मे लिये जोगी का वेष धारण किये दूत आता है।)

दूत।—अरे, और देव को काम नहिं, जम को करो प्रनाम।
जो दूजन के भक्त को, प्रान हरत परिनाम ॥१७॥

और

उलटे ते हूं बनत है, काज किये अति हेत।
जो जम जी सब को हरत, सोई जीविका देत ॥ १८ ॥

तो इस घर में चल कर जमपट दिखाकर गावैं।

(घूमता है)

शिष्य।—रावल जी! ड्योढ़ी के भीतर न जाना।

दूत।—अरे ब्राह्मण, यह किस का घर है?

शिष्य।—हम लोगों के परम प्रसिद्ध गुरु चाणक्य जी का।

दूत।—(हंस कर) अरे ब्राह्मण, तब तो यह मेरे गुरुभाई ही का घर है; मुझे भीतर जाने दे, मैं उस को धर्मोपदेश करूंगा।

शिष्य।—(क्रोध से) छिः मूर्ख! क्या तू गुरुजी से भी धर्म्म विशेष जानता है?

---

* उस काल में एक चाल के फकीर जम का चित्र दिखला कर संसार की अनित्यता के गीत गाकर भीख मांगते थे।

दूत।—अरे ब्राह्मण! क्रोध मत कर, सभी सब कुछ नहीं जानते, कुछ तेरा गुरु जानता है कुछ मेरे से लोग जानते हैं।

शिष्य।—(क्रोध से) मूर्ख! क्या तेरे कहने से गुरु जी की सर्वज्ञता उड़ जायगी?

दूत।—भला ब्राह्मण! जो तेरा गुरु सब जानता है तो बतलावे कि चन्द्र किस को नहीं अच्छा लगता?

शिष्य।—मूर्ख! इस को जानने से गुरु को क्या काम?

दूत।—यही तो कहता हूं कि यह तेरा गुरु ही समझेगा कि इस के जानने से क्या होता है? तू तो सूधा मनुष्य है तू केवल इतना ही जानता है कि कमल को चन्द्र प्यारा नहीं है। देख—

जदपि होत सुन्दर कमल, उलटो तदपि सुभाव।
जो नित पूरन चन्द सों, करत विरोध बनाव॥

चाणक्य—(सुन कर आप ही आप) अहा! "मैं चन्द्रगुप्त के बैरियों को जानता हूं" यह कोई गूढ़ वचन से कहता है।

शिष्य।—चल मूर्ख! क्या बेठिकाने की बकवाद कर रहा है।

दूत।—अरे ब्राह्मण! यह सब ठिकाने की बातैं होंगी।

शि०।—कैसे होंगी?

दूत।—जो कोई सुननेवाला और समझनेवाला होय।

चाणक्य।—रावल जी! बेखटके चले आइये, यहां आप को सुनने और समझनेवाले मिलेंगे।

दूत।—आया (आगे बढ़ कर) जय हो महाराज की।

चाणक्य।—(देख कर आप ही आप) कामों की भीड़ से यह नहीं निश्चय होता कि निपुणक को किस बात के जानने के लिये भेजा था। अरे जाना, इसे लोगों के जी का भेद लेने को भेजा था (प्रकाश) आओ आओ कहो अच्छे हो? बैठो।

दूत ।—जो आज्ञा (भूमि में बैठता है) ।

चाणक्य ।—कहो जिस काम को गए थे उस का क्या किया? चन्द्रगुप्त को लोग चाहते हैं कि नहीं?

दूत ।—महाराज! आप ने पहिले ही से ऐसा प्रबन्ध किया है कि कोई चन्द्रगुप्त से विराग न करै, इस हेतु सारी प्रजा महाराज चन्द्रगुप्त में अनुरक्त है, पर राक्षस मन्त्री के दृढ़ मित्र तीन ऐसे हैं जो चन्द्रगुप्त की वृद्धि नहीं सह सकते।

चाणक्य ।—(क्रोध से) अरे! कह कौन अपना जीवन नहीं सह सकते, उन के नाम तू जानता है?

दूत ।—जो नाम न जानता तो आप के सामने क्योंकर निवेदन करता?

चाणक्य ।—मैं सुना चाहता हूं कि उन के क्या नाम हैं?

दूत ।—महाराज सुनिये। पहिले तो शत्रु का पक्षपात करने वाला क्षपणक है।

चाणक्य ।—(हर्ष से आप ही आप) हमारे शत्रुओं का पक्षपाती क्षपणक है? (प्रकाश) उस का नाम क्या है?

दूत ।—जीवसिद्धि नाम है।

चाणक्य ।—तू ने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे शत्रुओं का पक्षपाती है?

दूत ।—क्योंकि उस ने राक्षस मन्त्री के कहने से देव पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग किया।

चाणक्य ।—(आप ही आप) जीवसिद्धि तो हमारा गुप्त दूत है (प्रकाश) हां और कौन है?

दूत ।—महाराज! दूसरा राक्षस मन्त्री का प्यारा सखा शकटदास कायथ है।

चाणक्य।—(हंस कर आप ही आप) कायथ कोई बड़ी बात नहीं है तो भी क्षुद्रशत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, इसी हेतु तो मैं ने सिद्धार्थक को उस का मित्र बना कर उस के पास रक्खा है (प्रकाश), हां, तीसरा कौन है ?

दूत।—(हंस कर) तीसरा तो राक्षस मन्त्री का मानो हृदय ही पुष्पपुरवासी चन्दनदास नामक वह बड़ा जौहरी है जिस के घर में मन्त्री राक्षस अपना कुटुम्ब छोड़ गया है।

चाणक्य।—(आप ही आप) अरे यह उस का बड़ा अन्तरंग मित्र होगा क्योंकि पूरे विश्वास बिना राक्षस अपना कुटुम्ब यों न छोड़ जाता (प्रकाश) भला तू ने यह कैसे जाना कि राक्षस मन्त्री वहां अपना कुटुम्ब छोड़ गया ?

दूत।—महाराज ! इस "मोहर" की अंगूठी से आप को विश्वास होगा (अंगूठी देता है)।

चाणक्य।—(अंगूठी लेकर और उस में राक्षस का नाम बांच कर प्रसन्न हो कर आप ही आप) अहा ! मैं समझता हूं कि राक्षस ही मेरे हाथ लगा (प्रकाश) भला तुम ने यह अंगूठी कैसे पाई, मुझ से सब वृत्तान्त तो कहो।

दूत।—सुनिये। जब मुझे आप ने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा तब मैं ने यह सोचा कि बिना भेस बदले मैं दूसरे के घर में न घुसने पाऊंगा, इस से मैं जोगी का भेस कर के जमराज का चित्र हाथ में लिये फिरता फिरता चन्दनदास जौहरी के घर में चला गया और वहां चित्र फैला कर गीत गाने लगा।

चाणक्य।—हां, तब ?

दूत।—तब महाराज ! कौतुक देखने को एक पांच बरस

का बड़ा सुन्दर बालक एक परदे के आड़ से बाहर निकला, उस समय परदे के भीतर स्त्रियों में बड़ा कल-कल हुआ कि "लड़का कहां गया" इतने में एक स्त्री ने द्वार के बाहर मुख निकाल कर देखा और लड़के को झट पकड़ ले गई, पर पुरुष की उंगली से स्त्री की उंगली पतली होती है, इस से द्वार ही पर यह अंगूठी गिर पड़ी और मैं उस पर राक्षस मन्त्री का नाम देख कर आप के पास उठा लाया।

चाणक्य।—वाह वाह! क्यों न हो, अच्छा जाओ, मैं ने सब सुन लिया! तुम्हें इस का फल शीघ्र ही मिलेगा।

दूत।—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य।—शारंगरव! शारंगरव!

शिष्य।—(आकर) आज्ञा गुरुजी?

चाणक्य।—बेटा कलम दवात कागज तो लाओ।

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर ले आता है) गुरु जी! लेआया।

चाणक्य।—(लेकर, आप ही आप) क्या लिखूं, इसी पत्र से राक्षस को जीतना है।

(प्रतिहारी आता है)

प्रतिहारी।—जय हो महाराज की जय हो।

चाणक्य।—(हर्ष से आप ही आप) वाह वाह कैसा सगुन हुआ कि कार्य्यारम्भ ही में जय शब्द सुनाई पड़ा (प्रकाश) कहो शोणोत्तरा क्यों आई हो?

प्र०।—महाराज! राजा चन्द्रगुप्त ने प्रणाम कहा है और पूछा है कि मैं पर्व्वतेश्वर की क्रिया किया चाहता हूं इस से आप की आज्ञा हो तो उन के पहिरे आभरणों को पण्डित ब्राह्मणों को दूं।

चाणक्य ।—(हर्ष से आप ही आप) वाह चन्द्रगुप्त वाह, क्यों न हो; मेरे जी की बात सोच कर संदेशा कहला भेजा है (प्रकाश) शोणोत्तरा ! चन्द्रगुप्त से कहो कि " वाह ! बेटा वाह ! क्यों न हो बहुत अच्छा विचार किया, तुम व्यवहार में बड़े ही चतुर हो इस से जो सोचा है सो करो, पर पर्व्वतेश्वर के पहिरे हुए आभरण गुणवान ब्राह्मणों को देने चाहिएं इस से ब्राह्मण मैं चुन के भेजूंगा । "

प्र० ।—जो आज्ञा महाराज ! (जाता है) ।

चाणक्य ।—शारंगरव ! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कहो कि जाकर चन्द्रगुप्त से आभरण लेकर मुझ से मिलें ।

शिष्य ।—जो आज्ञा (जाता है) ।

चाणक्य ।—(आप ही आप) पीछे तो यह लिखैं पर पहिले क्या लिखैं (सोच कर) अहा ! दूतों के मुख से ज्ञात हुआ है कि उस म्लेच्छ राजसैना में से प्रधान पांच राजा परम भक्ति से राक्षस की सेवा करते हैं ।

प्रथम चित्रवर्म्मा कुलूत को राजा भारी ।
मलय देशपति सिंहनाद दूजो बलधारी ॥
तीजो पुसकरनयन अहै कश्मीर देश को ।
सिन्धुसेन पुनि सिन्धु नृपति अति उग्र भेस को ॥
मेघाक्ष पांचवों प्रबल अति; बहु हय जुत पारस नृपति ।
अब चित्रगुप्त इन नाम कों मेटहिं हम जब लिखहिं हति* ॥

---

* अर्थात् अब जब हम इन का नाम लिखते हैं तो निश्चय ये सब मरैंगे, इस से अब चित्रगुप्त अपने खाते से इन का नाम काट दें, न ये जीते रहैंगे न चित्रगुप्त को लेखा रखना पड़ैगा ।

(कुछ सोच कर) अथवा न लिखूं अभी सब बात योंही रहै (प्रकाश) शारंगरव २ !

शिष्य।—(आकर) आज्ञा गुरुजी ?

चाणक्य।—बेटा ! वैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखें तो भी उन के अक्षर अच्छे नहीं होते इस, सैं सिद्धार्थक से कहो (कान में कहकर) कि वह शकटदास के पास जाकर यह सब बात यों लिखवाकर और "किसी का लिखा कुछ कोई आप ही बांचे" यह सरनामे पर नाम बिना लिखवा कर हमारे पास आवे और शकटदास से यह न कहे कि चाणक्य ने लिखवाया है।

शिष्य।—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य।—(आप ही आप) आहा ! मैलयकेतु को तो जीत लिया।

(चिट्ठी लेकर सिद्धार्थक आता है)

सि०।—जय हो महाराज की जय हो, महाराज ! यह शकट-दास के हाथ का लेख है।

चाणक्य।—(लेकर देखता है) वाह कैसे सुन्दर अक्षर हैं ! (पढ़ कर) बेटा, इस पर यह मोहर कर दो।

सि०।—जो आज्ञा (मोहर करके) महाराज, इस पर मोहर हो गई, अब और कहिये क्या आज्ञा है ?

चाणक्य।—बेटा जी ! हम तुम्हें एक अपने निज के काम में भेजा चाहते हैं।

सि०।—(हर्ष से) महाराज, यह तो आप की कृपा है कहिये, यह दास आप के कौन काम आ सकता है ?

चाणक्य।—सुनो, पहिले जहां सूली दी जाती है वहां जाकर

फांसी देनेवालों को दहिनी आंख दबाकर समझा देना * और जब वे तेरी बात समझ कर डर से इधर उधर भाग जांय तब तुम शकटदास को लेकर राक्षस मन्त्री के पास चले जाना। वह अपने मित्र के प्राण बचाने से तुम पर बड़ा प्रसन्न होगा और तुम्हें पारितोषिक देगा, तुम उस को लेकर कुछ दिनों तक राक्षस ही के पास रहना और जब और भी लोग पहुंच जांय तब यह काम करना (कान में समाचार कहता है)।

सि०।—जो आज्ञा महाराज।

चाणक्य।—शारंगरव शारंगरव!

शिष्य!—(आकर) आज्ञा गुरुजी?

चाणक्य।—कालपाशिक और दण्डपाशिक से यह कह दो कि चन्द्रगुप्त आज्ञा करता है कि जीवसिद्धि क्षपणक ने राक्षस के कहने से विषकन्या का प्रयोग करके पर्वतेश्वर को मारडाला, यही दोष प्रसिद्ध करके अपमानपूर्वक उस को नगर से निकाल दें।

शिष्य।—जो आज्ञा (घूमता है)।

चाणक्य।—बेटा! ठहर—सुन, और वह जो शकटदास कायस्थ है वह राक्षस के कहने से नित्य हमलोगों की बुराई करता है, यही दोष प्रगट करके उस को सूली दे दें और उस के कुटुम्ब को कारागार में भेज दें।

शिष्य।—जो आज्ञा महाराज! (जाता है)।

चाणक्य। (चिन्ता कर के आप ही आप) हा! क्या किसी भांति यह दुरात्मा राक्षस पकड़ा जायगा!

सि०।—महाराज! लिया।

---

* चाण्डालों को पहले से समझा दिया था कि जो आदमी दहनी आंख दबावै उस को हमारा मनुष्य समझ कर तुम लोग चटपट हट जाना।

चाणक्य।—(हर्ष से आप ही आप) अहा! क्या राक्षस को ले लिया? (प्रकाश) कहो क्या पाया?

सि०।—महाराज! आप ने जो संदेशा कहा वह मैं ने भली भांति समझ लिया, अब काम पूरा करने जाता हूं।

चाणक्य।—(मोहर और पत्र देकर) सिद्धार्थक! जा तेरा काम सिद्ध हो।

सि०।—जो आज्ञा (प्रणाम करके जाता है)।

शिष्य।—(आकर) गुरुजी, कालपाशिक दंडपाशिक आप से निवेदन करते हैं कि महाराज चंद्रगुप्त की आज्ञा पूर्ण करने जाते हैं।

चाणक्य।—अच्छा, बेटा! मैं चन्दनदास जौहरी को देखा चाहता हूं।

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर चन्दनदास को लेकर आता है) इधर आइये सेठ जी।

चन्दन०।—(आप ही आप) यह चाणक्य ऐसा निर्दय है कि यह जो एकाएक किसी को बुलावे तो लोग बिना अपराध भी इस से डरते हैं, फिर कहां मैं इस का नित्य का अपराधी, इसी से मैं ने धनसेनादिक तीन महाजनों से कह दिया है कि दुष्ट चाणक्य जो मेरा घर लूट ले तो आश्चर्य नहीं, इस से स्वामी राक्षस का कुटुम्ब और कहीं ले जाओ, मेरी जो गति होनी है वह हो।

शिष्य।—इधर आइये साह जी!

चन्दन०।—आया (दोनों घूमते हैं)।

चाणक्य।—(देख कर) आइये साह जी! कहिये अच्छे तो हैं? बैठिये, यह आसन है।

चन्दन०।—(प्रणाम करके) महाराज! आप नहीं जानते

कि अनुचित सत्कार अनादर से भी विशेष दुःख का कारण होता है, इस से मैं पृथ्वी ही पर बैठूंगा।

चाणक्य।—वाह! आप ऐसा न कहिए, आप को तो हम लोगों के साथ यह व्यवहार उचित ही है इस से आप आसन ही पर बैठिए।

चन्दन०।—(आप ही आप) कोई बात तो इस ने जानी (प्रकाश) जो आज्ञा (बैठता है)।

चाणक्य।—कहिए साह जी! चन्दनदास जी! आप को व्यापार में लाभ तो होता है न?

चन्दन०।—महाराज, क्यों नहीं, आप की कृपा से सब बनज व्यौपार अच्छी भांति चलता है।

चाणक्य।—कहिए साह जी! पुराने राजाओं के गुण चन्द्रगुप्त के दोषों को देख कर कभी लोगों को स्मरण आते हैं?

चन्दन०।—(कान पर हाथ रख कर) राम! राम! शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की भांति शोभित चन्द्रगुप्त को देख कर कौन नहीं प्रसन्न होता?

चाणक्य।—जो प्रजा ऐसी प्रसन्न है तो राजा भी प्रजा से कुछ अपना भला चाहते हैं।

चन्दन०।—महाराज! जो आज्ञा; मुझ से कौन और कितनी वस्तु चाहते हैं?

चाणक्य।—सुनिये साह जी! यह नन्द का राज * नहीं है, चन्द्रगुप्त का राज्य है, धन से प्रसन्न होनेवाला तो वह लालची नन्द ही था, चन्द्रगुप्त तो तुम्हारे ही भले से प्रसन्न होता है।

चन्दन०।—(हर्ष से) महाराज, यह तो आप की कृपा है।

---

* यहां तुच्छता प्रकट करने के लिये 'राज्य' का अपभ्रंश "राज" लिखा गया है। रा०रं०वि०सिंह।

चाणक्य।—पर यह तो मुझ से पूछिए कि वह भला किस प्रकार से होगा?

चन्दन०।—कृपा करके कहिए।

चाणक्य।—सौ बात की एक बात यह है कि राजा के विरुद्ध कामों को छोड़ो।

चन्दन०।—महाराज! वह कौन अभागा है जिसे आप राज-विरोधी समझते हैं?

चाणक्य।—उस में पहिले तो तुम्हीं हो।

चन्दन०।—(कान पर हाथ रख कर) राम! राम! राम! भला तिनके से और अग्नि से कैसा विरोध?

चाणक्य।—विरोध यही है कि तुम ने राजा के शत्रु राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब अब तक घर में रख छोड़ा है।

चन्दन०।—महाराज! यह किसी दुष्ट ने आप से झूठ कह दिया है।

चाणक्य।—सेठ जी! डरो मत, राजा के भय से पुराने राजा के सेवक लोग अपने मित्रों के पास बिना चाहे भी कुटुम्ब छोड़ कर भाग जाते हैं, इस से इस के छिपाने ही में दोष होगा।

चन्दन०।—महाराज! ठीक है, पहिले मेरे घर पर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब था।

चाणक्य।—पहिले तो कहा कि किसी ने झूठ कहा है। अब कहते हो था, यह गबड़े की बात कैसी?

चन्दन०।—महाराज! इतना ही मुझ से बातों में फेर पड़ गया।

चाणक्य।—सुनो, चन्द्रगुप्त के राज्य में छल का विचार नहीं होता, इस से राक्षस का कुटुम्ब दो तो, तुम सच्चे हो जाओगे।

चन्दन० ।—महाराज ! मैं कहता हूं न, पहिले राक्षस का कुटुम्ब था ।

चाणक्य ।—तो अब कहां गया ?

चन्दन० ।—न जाने कहां गया ।

चाणक्य ।—(हंसकर) सुनो सेठ जी ! तुम क्या नहीं जानते कि सांप तो सिर पर बूटी पहाड़ पर । और जैसा चाणक्य ने नन्द को (इतना कह कर लाज से चुप रह जाता है) ।

चन्दन० ।—(आप ही आप)

प्रिया दूर घन गरजहीं, अहो दुःख अतिघोर ।
औषधि दूर हिमाद्रि पै, सिर पै सर्प कठोर ॥

चाणक्य ।—चन्द्रगुप्त को अब राक्षस मन्त्री राज पर से उठा देगा यह आशा छोड़ो, क्योंकि देखो—

नृप नन्द जीवत नीतिबल सों, मति रही जिन की भली ।
ते "वक्रनासादिक" सचिव नहिं, थिर सके करि नसि चली ॥
सो श्री सिमिटि अब आय लिपटी, चन्द्रगुप्त नरेस सों ।
तेहि दूर को करि सकै चांदनि, छुटत कहुं राकेस सों ? ॥

और भी

"सदा दन्ति के कुम्भ को" इत्यादि फिर से पढ़ता है ।

चन्दन० ।-(आपही आप) अब तुझ को सब कहना फबता है।

(नेपथ्य में) हटो हटो—

चाणक्य ।—शारंगरव ! यह क्या कोलाहल है देख तो ?

शिष्य ।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर) महाराज राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा से राजद्वेषी जीवसिद्धि क्षपणक निरादरपूर्वक नगर से निकाला जाता है ।

चाणक्य ।—क्षपणक ! हा ! हा !, अथवा राजविरोध का फल भोगैं । सुनो चन्दनदास ! देखो राजा अपने

द्वेषियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है, मैं तुम्हारे भले की कहता हूं सुनो, और राक्षस का कुटुम्ब देकर जन्म भर राजा की कृपा से सुख भोगो।

चन्दन०।-महाराज ! मेरे घर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब नहीं है।

(नेपथ्य में कलकल होता है)

चाणक्य।-शार्ंगरव ! देख तो यह क्या कलकल होता है ?

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज ! राजा की आज्ञा से राजद्वेषी शकटदास कायस्थ को सूली देने ले जाते हैं।

चाणक्य।—राजविरोध का फल भोगे। देखो सेठ जी ! राजा अपने विरोधियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है, इस से राक्षस का कुटुम्ब छिपाना वह कभी न सहेगा, इसी से उस का कुटुम्ब देकर तुम को अपना प्राण और कुटुम्ब बचाना हो तो बचाओ।

चन्दन०।—महाराज ! क्या आप मुझे डर दिखाते हैं, मेरे यहां अमात्य राक्षस का कुटुम्ब हई नहीं है पर जो होता तो भी मैं न देता।

चाणक्य।—क्या चन्दनदास ! तुम ने यही निश्चय किया है?

चन्दन०।—हां ! मैं ने यही दृढ़ निश्चय किया है।

चाणक्य।—(आपही आप) वाह चन्दनदास ! वाह क्यों न हो !

दूजे के हित प्राण दै, करै धर्म्म प्रतिपाल।
को ऐसो शिवि के बिना, दूजो है या काल॥

(प्रकाश) क्या चन्दनदास, तुम ने यही निश्चय किया है ?

चन्दन०।— हां ! हां ! मैं ने यही निश्चय किया है।

चाणक्य।—(क्रोध से) दुरात्मा दुष्ट बनिया ! देख राजकोप का कैसा फल पाता है।

चन्दन० ।—(बांह फैलाकर) मैं प्रस्तुत हूं आप जो चाहिए अभी दण्ड दीजिए।

चाणक्य ।—(क्रोध से) शारंगरव ! कालपाशिक, दण्डपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दण्ड दें। नहीं ठहरो, दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इस के घर का सारा धन लेलें और इस को कुटुम्ब समेत पकड़ कर बांध रक्खें, तब तक मैं चन्द्रगुप्त से कहूं वह आप ही इस के सर्वस्व और प्राणहरण की आज्ञा देगा।

शिष्य ।—जो आज्ञा महाराज। सेठ जी, इधर आइये।

चन्दन० ।—लीजिए महाराज ! यह मैं चला (उठ कर चलता है) (आप ही आप) अहा ! मैं धन्य हूं कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, अपने हेतु तो सभी मरते हैं।

(दोनों बाहर जाते हैं)

चाणक्य ।—(हर्ष से) अब ले लिया है राक्षस को, क्योंकि—

जिमि इन तृन सम प्राण तजि, कियो मित्र को त्रान।
तिमि सोहू निज मित्र अरु, कुल रखिहै दै प्रान॥

(नेपथ्य में कलकल)

चाणक्य ।—शारंगरव !

शिष्य ।—(आकर) आज्ञा गुरु जी ?

चाणक्य ।—देख तो यह कैसी भीड़ है ?

शिष्य ।—(बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर) महाराज ! शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया।

चाणक्य ।—(आप ही आप) वाह सिद्धार्थक ! काम का आरम्भ तो किया (प्रकाश) हैं क्या ले गया ? (क्रोध से) बेटा दौड़ कर भागुरायण से कहो कि उस को पकड़े।

शिष्य।—(बाहर जाकर आता है) (विषाद से) गुरु जी ! भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है।

चाणक्य।—(आप ही आप) निज काज साधने के लिए जाय (क्रोध से प्रकाश) भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा से कहो कि दुष्ट भागुरायण को पकड़ें।

शिष्य।—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर विषाद से) महाराज ! बड़े दुःख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा हलचल हो रहा है। भद्रभट इत्यादि तो सब पिछली ही रात भाग गए।

चाणक्य।—(आप ही आप) सब काम सिद्ध करैं (प्रकाश) बेटा, सोच मत करो।

जे बात कछु जिय धारि भागे, भले सुख सों भागहीं।
जे रहे तेहू जांहिं तिन को, सोच मोहिं जिय कछु नहीं॥
सत सैन हूं सों अधिक साधिनि, काज की जेहि जग कहै।
सो नन्दकुल की खननहारी बुद्धि नित मोमें रहै॥

(उठ कर और आकाश की ओर देख कर) अभी भद्रभटादिकों को पकड़ता हूं (आप ही आप) राक्षस ! अब मुझ से भाग के कहां जायगा, देख—

एकाकी मद गलित गज, जिमि नर लावहिं बांधि।
चन्द्रगुप्त के काज मैं, तिमि तोहि धरिहैं साधि॥

(सब जाते हैं)—(जवनिका गिरती है)

इति प्रथमांक।

द्वितीय अङ्क।

स्थान-राजपथ।

(मदारी आता है)

मदारी।—अललललललल, नाग लाए सांप लाए!

तन्त्र युक्ति सब जानहीं, मण्डल रचहिं बिचार।
मन्त्र रच्छहीं ते करहिं, अहि नृप को उपचार॥

(* आकाश में देख कर) महाराज! क्या कहा? तू कौन है? महाराज! मैं जीर्णविष नाम संपेरा हूं (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा कि मैं भी सांप का मन्त्र जानता हूं खेलूंगा? तो आप काम क्या करते हैं, यह तो कहिए? (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या कहा मैं राजसेवक हूं? तो आप तो सांप के साथ खेलते ही हैं। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा कैसे; मन्त्र और जड़ी बिन मदारी और आंकुस बिन मतवाले हाथी का हाथीवान, वैसेही नए अधिकार के संग्रामविजयी राजा के सेवक ये तीनों अवश्य नष्ट होते हैं। (ऊपर देख कर) यह देखते २ कहां चला गया? (फिर ऊपर देख कर) क्या महाराज! पूछते हो कि इन पिटारियों में क्या है? इन पिटारियों में मेरी जीविका के सर्प हैं। (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा कि मैं देखूंगा? वाह वाह महाराज! देखिए देखिए, मेरी बोहनी हुई, कहिए इसी स्थान पर खोलूं? परन्तु वह स्थान अच्छा नहीं है; यदि आप को देखने की इच्छा हो तो आप इस स्थान में आइए मैं दिखाऊं (फिर आकाश की ओर देख कर) क्या

* 'आकाश में देख कर' या 'ऊपर देख कर' का आशय यह है मानों दूसरे से बात करता है।

कहा; कि यह स्वामी राक्षस मन्त्री का घर है, इस में मैं घुसने न पाऊंगा, तो आप जांय, महाराज! मैं तो अपनी जीविका के प्रभाव से सभी के घर जाता आता हूं। अरे क्या वह गया? (चारों ओर देख कर) अहा! बड़े आश्चर्य्य की बात है, जब मैं चाणक्य की रक्षा में चन्द्रगुप्त को देखता हूं तब समझता हूं कि चन्द्रगुप्त ही राज्य करैगा, पर जब राक्षस की रक्षा में मलयकेतु को देखता हूं तब चन्द्रगुप्त का राज गया सा दिखाई देता है। क्योंकि—

चाणक्य ने लै जदपि बांधी बुद्धिरूपी डोर सों।
करि अचल लक्ष्मी मौर्य्यकुल में नीति के निज जोर सों॥
पै तदपि राक्षस चातुरी करि हाथ में ताकों करै।
गहि ताहि खींचत आपुनो दिसि मोहि यह जानो परै॥

सो इन दोनों परम नीतिचतुर मन्त्रियों के विरोध में नन्दकुल की लक्ष्मी संशय में पड़ी है।

दोऊ सचिव बिरोध सों, जिमि बन जुग गजराय।
हथिनी सी लक्ष्मी बिचल, इत उत झोंका खाय॥

तो चलूं अब मन्त्री राक्षस से मिलूं।

(जवनिका उठती है और आसन पर बैठा राक्षस और पास प्रियम्बदक नामक सेवक दिखाई देते हैं)

राक्षस।—(ऊपर देखकर आंखों में आंसू भरकर) हा! बड़े कष्ट की बात है—

गुन नीति बलसों जीति अरि जिमि, आपु जादवगन हयो।
तिमि नन्द को यह बिपुल कुल, बिधि बाम सों सब नसि गयो॥
एहि सोच में मोहि दिवस अरु निसि, नित्य जागत बीतहीं।
यह लखौ चित्र बिचित्र मेरे भाग के बिनु भीतहीं॥

अथवा

बिनु भक्तिभूले, बिनहिं स्वारथ हेतु, हम यह पन लियो।

बिनु प्राण के भय, बिनु प्रतिष्ठा लाभ, सब अबलौं कियो ॥
सब छोड़ि कै परदासता एहि हेत नित प्रति हम करैं।
जो स्वर्ग मैं हूं स्वामि मम निज शत्रु हत लखि सुख भरैं ॥

(आकाश की ओर देखकर दुःख से) हा ! भगवती लक्ष्मी ! तूं बड़ी अगुणज्ञा है। क्यौंकि—

निज तुच्छ सुख के हेतु तजि, गुणरासि नन्द नृपाल कों।
अब शूद्र मैं अनुरक्त ह्वै लपटी सुधा मनु व्याल कों ॥
ज्यौं मत्त गज के मरत मद की धार ता साथहि नसै।
त्यौं नन्द के साथहि नसी किन निलज अजहूं जग बसै ॥

अरे पापिन !

का जग मैं कुलवन्त नृप, जीवत रह्यौ न कोय ?।
जो तू लपटी शूद्र सों, नीच गामिनी होय ॥

अथवा।

बारवधू जन को अहै, सहजहिं चपल सुभाव।
तजि कुलीन गुनियन करहिं, ओछे जन सो चाव ॥

तो हम भी अब तेरा आधार ही नाश किए देते हैं (कुछ सोचकर) हम मित्रवर चन्दनदास के घर अपना कुटुम्ब छोड़कर बाहर चले आए सो अच्छा ही किया। क्यौंकि एक तो अभी कुसुमपुर को चाणक्य घेरा नहीं चाहता, दूसरे यहां के निवासी महाराज नन्द मैं अनुरक्त हैं, इस से हमारे सब उद्योगों में सहायक होते हैं। वहां भी विषादिक से चन्द्रगुप्त के नाश करने को और सब प्रकार से शत्रु का दांव घात व्यर्थ करने को बहुत सा धन देकर शकटदास को छोड़ ही दिया है। प्रतिक्षण शत्रुओं का भेद लेने को और उन का उद्योग नाश करने को भी जीवसिद्धि इत्यादि सुहृद नियुक्त ही हैं। सो अब तो—

विष वृक्ष, अहिसुत, सिंहपोत समान जा दुखरास कों।

नृपनन्द निजसुत जानि पाल्यो, सकुल निज अनु नाश को ॥
ता चन्द्रगुप्तहि बुद्धि सर मम तुरत मारि गिराइहै ।
जो दुष्ट दैव न कवच बनि कै असह आड़े आइहै ॥

(कंचुकी आता है)

कंचुकी ।—(आप ही आप)

नृपनन्द काम समान चानक नीति जरजर जर भयो ।
पुनि धर्म्म सम पुर देह सों नृप चन्द्र क्रम सों बढ़ि लयो ॥
अवकास लहि तेहि लोभ राक्षस जदपि जीतन जाइहै ।
पै सिथिल बल भे नाहिं कोउ बिधि चन्द्र पै जय पाइहै ॥

(देखकर) यह मन्त्री राक्षस है (आगे बढ़ कर) मन्त्री ! आप का कल्याण हो ।

राक्षस ।—जाजलक ! प्रणाम करता हूं । अरे प्रियम्बदक ! आसन ला ।

प्रियम्बदक ।—(आसन ला कर) यह आसन है, आप बैठें ।

कंचुकी ।—(बैठकर) मंत्री ! कुमार मलयकेतु ने आप को यह कहा है कि "आप ने बहुत दिनों से अपने शरीर का सब शृंगार छोड़ दिया है इस से मुझे बड़ा दुःख होता है । यद्यपि आप को अपने स्वामी के गुण नहीं भूलते और उन के वियोग के दुख में यह सब कुछ नहीं अच्छा लगता तथापि मेरे कहने से आप इन को पहिरैं।" (आभरण दिखाता है) मन्त्री ! ये आभरण कुमार ने अपने अंग से उतार कर भेजे हैं आप इन्हें धारण करैं ।

राक्षस ।—जाजलक ! कुमार से कह दो कि तुम्हारे गुणों के आगे मैं स्वामी के गुण भूल गया । पर—

इन दुष्ट बैरिन सों दुखी निज अंग, नाहिं सँवारि हौं ।
भूषन बसन सिंगार तब लौं , हौं न तन कछु धारिहौं ॥

जब लौं न सब रिपु नासि, पाटलिपुत्र फेर बसाइहौं।
हे कुंवर ! तुम कों राज दै, सिर अचल छत्र फिराइहौं॥

कंचुकी।—अमात्य ! आप जो न करो सो थोड़ा है, यह बात कौन कठिन है, पर कुमार की यह पहिली बिनती तो माननेही के योग्य है।

राक्षस।—मुझे तो जैसी कुमार की आज्ञा माननोय है वैसी ही तुम्हारी भी, इस से मुझे कुमार की आज्ञा मानने में कोई बिचार नहीं है।

कंचुकी।—(आभूषण पहिराता है) कल्याण हो महाराज ! मेरा काम पूरा हुआ।

राक्षस।—मैं प्रणाम करता हूं।

कंचुकी।—मुझ को जो आज्ञा हुई थी सो मैं ने पूरी की (जाता है)।

राक्षस।—प्रियम्बदक ! देख तो मेरे मिलने को द्वार पर कौन खड़ा है।

प्रियम्बदक।—जो आज्ञा (आगे बढ़कर संपेरे के पास आकर) आप कौन हैं ?

संपेरा।—मैं जीर्णविष नामक संपेरा हूं और राक्षस मन्त्री के साम्हने मैं सांप खेलना चाहता हूं। मेरी यही जीविका है।

प्रियम्बदक।—तो ठहरो हम अमात्य से निवेदन कर लें (राक्षस के पास जाकर) महाराज ! एक संपेरा है। वह आप को अपना करतब दिखलाया चाहता है।

राक्षस।—(बांई आंख का फड़कना दिखाकर, आप ही आप) हैं आज पहिले ही सांप दिखाई पड़े (प्रकाश) प्रियम्बदक ! मेरा सांप देखने को जी नहीं चाहता सो इसे कुछ देकर बिदा कर।

प्रियम्बदक।—जो आज्ञा (संपेरे के पास जाकर) लो, मंत्री तुम्हारा कौतुक बिना देखे ही तुम्हें यह देते हैं, जाओ।

संपेरा।—मेरी ओर से यह बिनती करो कि मैं केवल संपेरा ही नहीं हूं किन्तु भाषा का कवि भी हूं, इस से जो मंत्री जी मेरी कविता मेरे मुख से न सुना चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ़ लें (एक पत्र देता है)।

प्रियम्बदक।—(पत्र लेकर राक्षस के पास आकर) महाराज! वह संपेरा कहता है कि मैं केवल संपेरा ही नहीं हूं, भाषा का कवि भी हूं। इस से जो मंत्री जी मेरी कविता मेरे मुख से सुनना न चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ़ लें (पत्र देता है)।

राक्षस।—(पत्र पढ़ता है)

सकल कुसुम रस पान करि, मधुप रसिक सिरताज।
जो मधु त्यागत ताहि लै, होत सबै जगकाज॥

(आप ही आप) अरे!!—"मैं कुसुमपुर का वृत्तान्त जाननेवाला आप का दूत हूं" इस दोहे से यह ध्वनि निकलती है। अह! मैं तो कामों से ऐसा घबड़ा रहा हूं कि अपने भेजे भेदिया लोगों को भी भूल गया, अब स्मरण आया, यह तो संपेरा बना हुआ विराधगुप्त कुसुमपुर से आया है (प्रकाश)। प्रियम्बदक! इस को बुलाओ यह सुकवि है, मैं भी इस की कविता सुना चाहता हूं।

प्रियम्बदक।—जो आज्ञा (संपेरे के पास जाकर)। चलिए, मन्त्री जी आप को बुलाते हैं।

संपेरा।—(मन्त्री के साम्हने जाकर और देखकर आप ही आप) अरे यही मन्त्री राक्षस है? अहा!—

ले बाम बाहु-लताहि राखत कण्ठ सौं खसि खसि परै।
तिमि धरे दच्छिन बाहु कोहू गोद मैं बिचलै गिरै॥
जा बुद्धि के डर होइ संकित नृप हृदय कुच नहिं धरै।
अजहुं न लक्ष्मी चन्द्रगुप्तहि गाढ़ आलिंगन करै॥

(प्रकाश) मन्त्री की जय हो।

राक्षस।—(देखकर) अरे विराध—(संकोच से बात उड़ाकर) प्रियम्वदक! मैं जब तक सर्पों से अपना जी बहलाता हूं तब तक सब को लेकर तू बाहर ठहर।

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा।

(बाहर जाता है)

राक्षस।—मित्र विराधगुप्त! इस आसन पर बैठो।

विराधगुप्त।—जो आज्ञा (बैठता है)।

राक्षस।—(खेद के सहित निहार कर) हा! महाराज नन्द के आश्रित लोगों की यह अवस्था! (रोता है)

विराधगुप्त।—आप कुछ शोच न करैं, भगवान की कृपा से शीघ्र ही वही अवस्था होगी।

राक्षस।—मित्र विराधगुप्त! कहो कुसुमपुर का वृत्तान्त कहो।

विराधगुप्त।—महाराज! कुसुमपुर का वृत्तान्त बहुत लम्बा चौड़ा है इस से जहां से आज्ञा हो वहां से कहूं।

राक्षस।—मित्र! "चन्द्रगुप्त के नगरप्रवेश के पीछे मेरे भेजे हुए विष देनेवाले लोगों ने क्या क्या किया?" यह सुना चाहता हूं।

विराधगुप्त।—सुनिए-शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारस, वाह्लीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजों की सहायता से, चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर के बलरूपी समुद्र से कुसुमपुर चारो ओर से घिरा हुआ है।

राक्षस ।—(कृपाण खींच कर क्रोध से) हैं ! मेरे जीते को कुसुमपुर घेर सकता है ? प्रवीरक ! प्रवीरक !

चढ़ौ लै सरैं धाइ घेरो अटा कों ।
धरौ द्वार पै कुंजरैं ज्यों घटा कों ॥
कहौ जोधनै मृत्यु को जीति धावैं ।
चलै सङ्ग भै छांड़ि कै कीर्त्ति पावैं ॥

विराधगुप्त ।—महाराज ! इतनी शीघ्रता न कीजिये, मेरी बात सुन लीजिये ।

राक्षस ।—कौन बात सुनूं ? अब मैं ने जान लिया कि इसी का समय आगया है (शस्त्र छोड़कर आंखों में आंसू भर-कर) हा ! देव नन्द ! राक्षस को तुम्हारी कृपा कैसे भूलैगी ?

हैं जहां झुंड खड़े गज मेघ के आज्ञा करौ तहां राक्षस ! जाय कै ।
त्यौं ये तुरङ्ग अनेकन हैं, तिनहूं के प्रबन्धहि राखौ बनाय कै ॥
पैदल ये सब तेरे भरोसे हैं, काज करौ तिन को चित लाय कै ।
यों कहि एक हमैं तुम मानत हे, निज काज हजार बनाय कै ॥

हां फिर ?

विराधगुप्त ।—तब चारों ओर से कुसुमनगर घेर लिया और नगरवासी बिचारे भीतर ही भीतर घिरे २ घबड़ा गये, उन की उदासी देखकर सुरंग के मार्ग से सर्व्वार्थसिद्धि तपोबन में चला गया, और स्वामी के बिरह से आप के सब लोग शिथिल हो गए । तब अपने जय की डौंड़ी सब नगर में शत्रु लोगों ने फिरवा दी, और आप के भेजे हुए लोग सुरंग में इधर उधर छिप गए, और जिस विष-कन्या को आप ने चन्द्रगुप्त के नाश हेतु भेजा था उस से तपस्वी पर्व्वतेश्वर मारा गया ।

राक्षस ।- अहा मित्र ! देखो कैसा आश्चर्य्य हुआ—

जो बिषमयी नृप चन्द्र बधाहित नारि राखी लाइ कै।
तासों हत्यो पर्व्वत उलटि चाणक्य बुद्धि उपाइ कै॥
जिमि करन शक्ति अमोघ अरजुन हेतु धरी छिपाइ कै।
पै कृष्ण के मत सो घटोत्कच पै परी घहराइ कै॥

विराधगुप्त।—महाराज! समय की सब उलटी गति है!—क्या कीजिएगा?

राक्षस।—हां! तब क्या हुआ?

विराधगुप्त।—तब, पिता का बध सुनकर कुमार मलयकेतु नगर से निकल कर चले गए, और पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक पर उन लोगों ने अपना विश्वास जमा लिया। तब उस दुष्ट चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का प्रवेशमुहूर्त्त प्रसिद्ध कर के नगर के सब बढ़ई और लोहारों को बुला कर एकत्र किया और उन से कहा कि महाराज के नन्द-भवन में गृहप्रवेश का मुहूर्त्त ज्योतिषियों ने आज ही आधी रात का दिया है, इस से बाहर से भीतर तक सब द्वारों को जांच लो; तब उस से बढ़ई लोहारों ने कहा कि "महाराज! चन्द्रगुप्त का गृहप्रवेश जानकर दारुवर्म्म ने प्रथम द्वार तो पहिले ही सोने की तोरनों से शोभित कर रक्खा है, भीतर के द्वारों को हम लोग ठीक करते हैं।" यह सुन कर चाणक्य ने कहा कि बिना कहे ही दारुवर्म्म ने बड़ा काम किया इस से उस को चतुराई का पारितोषिक शीघ्र ही मिलैगा।

राक्षस।—(आश्चर्य्य से) चाणक्य प्रसन्न हो यह कैसी बात है? इस से दारुवर्म्म का यत्न या तो उलटा हो या निष्फल होगा, क्योंकि इस ने बुद्धि मोह से या राजभक्ति से बिना समय ही चाणक्य के जी में अनेक सन्देह और विकल्प उत्पन्न कराया। हां फिर?

विराधगुप्त ।—फिर उस दुष्ट चाणक्य ने बुला कर सब को सहेज दिया कि आज आधी रात को प्रवेश होगा, और उसी समय पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक और चन्द्रगुप्त को एक आसन पर बिठा कर पृथ्वी का आधा २ भाग कर दिया।

राक्षस।—क्यों पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक को आधा राज मिला, यह पहिले ही उस ने सुना दिया?

विराधगुप्त।—हां तो इस से क्या हुआ?

राक्षस।—(आप ही आप) निश्चय यह ब्राह्मण बड़ा धूर्त्त है, कि इस ने उस सीधे तपस्वी से इधर उधर की चार बात बना कर पर्व्वतेश्वर के मारने के अपयश निवारण के हेतु यह उपाय सोचा। (प्रकाश) अच्छा कहो—तब?

विराधगुप्त।—तब यह तो उस ने पहिले ही प्रकाश कर दिया था कि आज रात को गृहप्रवेश होगा, फिर उस ने वैरोधक को अभिषेक कराया और बड़े बड़े बहुमूल्य स्वच्छ मोतियों का उस को कवच पहिराया और अनेक रत्नों से जड़ा सुन्दर मुकुट उस के सिर पर रक्खा और गले में अनेक सुगन्ध के फूलों की माला पहिराई, जिस से वह एक ऐसे बड़े राजा की भांति हो गया कि जिन लोगों ने उसे सर्वदा देखा है वे भी न पहिचान सकें, फिर उस दुष्ट चाणक्य की आज्ञा से लोगों ने चन्द्रगुप्त की चन्द्रलेखा नाम की हथिनी पर बिठा कर बहुत से मनुष्य साथ कर के बड़ी शीघ्रता से नन्दमन्दिर में उस का प्रवेश कराया। जब वैरोधक मन्दिर में घुसने लगा तब आप का भेजा दारुवर्म्म बढ़ई उस को चन्द्रगुप्त समझ कर उस के ऊपर गिराने को अपनी कल की बनी तोरन लेकर सावधान हो बैठा। इस के पीछे

चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजा सब बाहर खड़े रह गए और जिस बर्बर को आप ने चन्द्रगुप्त के मारने के हेतु भेजा था वह भी अपनी सोने के छड़ी की गुप्ती जिस में एक छोटी कृपाण थी लेकर वहां खड़ा हो गया।

राक्षस।--दोनों ने बे ठिकाने काम किया, हां फिर?

विराधगुप्त।—तब उस हथिनी को मार कर बढ़ाया और उस के दौड़ चलने से कल की तोरण का लक्ष, जो चन्द्रगुप्त के धोखे वैरोधक पर किया गया था, चूक गया और वहां बर्बर जो चन्द्रगुप्त का आसरा देखता था, वह बिचारा उसी कल की तोरण से मारा गया। जब दारुवर्म्मा ने देखा कि लक्ष तो चूक गए अब मारे जायहींगे तो उस ने उस कल के लोहे की कील से उस ऊंचे तोरण के स्थान ही पर से चन्द्रगुप्त के धोखे तपस्वी वैरोधक को हथिनी ही पर मार डाला।

राक्षस।—हाय! दोनों बात कैसे दुःख की हुई कि चन्द्रगुप्त तो काल से बच गया और दोनों बिचारे बर्बर और वैरोधक मारे गए (आप ही आप) दैव ने इन दोनों को नहीं मारा, हम लोगों को मारा!! (प्रकाश) और वह दारुवर्म्म बढ़ई क्या हुआ?

विराधगुप्त।—उस को वैरोधक के साथ के मनुष्यों ने मार डाला।

राक्षस।—हाय! बड़ा दुःख हुआ! हाय प्यारे! दारुवर्म्म का हम लोगों से वियोग हो गया। अच्छा! उस वैद्य अभयदत्त ने क्या किया?

विराधगुप्त।—महाराज! सब कुछ किया।

राक्षस।—(हर्ष से) क्या चन्द्रगुप्त मारा गया?

विराधगुप्त।—दैव ने न मरने दिया।

राक्षस।—(शोक से) तो क्या फूल कर कहते हो कि सब कुछ किया ?

विराधगुप्त।—उस ने औषधि में विष मिला कर चन्द्रगुप्त को दिया, पर चाणक्य ने उस को देख लिया और सोने के बरतन में रख कर उस का रंग पलटा जान कर चन्द्रगुप्त से कह दिया कि इस औषधि में विष मिला है, इस को न पीना।

राक्षस।—अरे यह ब्राह्मण बड़ा ही दुष्ट है। हां तो वह वैद्य क्या हुआ ?

विराधगुप्त।—उस वैद्य को वही औषधि पिला कर मार डाला।

राक्षस।—(शोक से) हाय हाय बड़ा गुणी मारा गया ! भला शयनघर के प्रबन्ध करनेवाले प्रमोदक ने क्या किया ?

विराधगुप्त।—उस ने सब चौका लगाया।

राक्षस।—(घबड़ा कर) क्यों ?

विराधगुप्त।—उस मूर्ख को जो आप के यहां से व्यय को धन मिला सो उस ने अपना बड़ा ठाट बाट फैलाया, यह देखते ही चाणक्य चौकन्ना हो गया औ उस से अनेक प्रश्न किए, जब उस ने उन प्रश्नों के उत्तर अण्ड-बण्ड दिये तो उस पर पूरा सन्देह कर के दुष्ट चाणक्य ने उस को बुरी चाल से मार डाला।

राक्षस।—हा ! क्या दैव ने यहां भी उलटा हमी लोगों को मारा ! भला वह चन्द्रगुप्त को सोते समय मारने के हेतु जो राजभवन में बीभत्सकादिक बीर सुरंग में छिपा रक्खे थे उन का क्या हुआ ?

विराधगुप्त।—महाराज ! कुछ न पूछिये।

राक्षस।—(घबड़ाकर) क्यों क्यों? क्या चाणक्य ने जान लिया?

विराधगुप्त।—नहीं तो क्या?

राक्षस—कैसे?

विराधगुप्त।—महाराज! चन्द्रगुप्त के सोने जाने के पहिले ही वह दुष्ट चाणक्य उस घर में गया और उस को चारो ओर से देखा, तो भीत की एक दरार से चिउंटी लोग चावल के कने लाती हैं यह देख कर उस दुष्ट ने निश्चय कर लिया कि इस घर के भीतर मनुष्य छिपे हैं, बस यह निश्चय कर उस ने उस घर में आग लगवा दिया और धूआं से घबड़ा कर निकल तो सके ही नहीं, इस से वे वीभत्सकादिक वहीं भीतर ही जल कर राख हो गए।

राक्षस।—(सोच से) मित्र! देख चन्द्रगुप्त का भाग्य कि सब के सब मर गये। (चिन्ता सहित) अहा! सखा! देख इस दुष्ट चन्द्रगुप्त का भाग्य!!!

कन्या जो विष की गई, ताहि हतन के काज।
तासों मार्‍यौ पर्व्वतक, जाको आधो राज॥
सबै नसे कलबल सहित, जे पठये बध हेत।
उलटी मेरी नीति सब, मौर्य्यहि को फल देत॥

विराधगुप्त।—महाराज! तब भी उद्योग नहीं छोड़ना चाहिये—

प्रारम्भ ही नहिं विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजैं।
पुनि करहिं तौ कोउ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं॥
धरि लात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम ते टरैं।
जे पुरुष उत्तम अन्त मैं ते सिद्ध सब कारज करैं॥

और भी—

का सेसहि नहिं भार पै, धरतो देत न डारि।
कहा दिवसमनि नहिं थकत, पै नहिं रुकत बिचारि॥
सज्जन ताको हित करत, जेहि किय अंगीकार।
यहै नेम सुकृतीन को, निज जिय करहु बिचार॥

राक्षस।—मित्र! यह क्या तू नहीं जानता कि मैं प्रारब्ध के भरोसे नहीं हूं? हां, फिर?

विराधगुप्त।—तब से दुष्ट चाणक्य चन्द्रगुप्त की रक्षा में चौकन्ना रहता है और इधर उधर के अनेक उपाय सोचा करता है और पहिचान २ के नन्द के मन्त्रियों को पकड़ता है।

राक्षस।—(घबड़ा कर) हां, कहो तो मित्र! उस ने किसे किसे पकड़ा है?

विराधगुप्त।—सब के पहिले तो जीवसिद्धि क्षपणक को निरादर कर के नगर से निकाल दिया।

राक्षस।—(आप ही आप) भला इतने तक तो कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि वह योगी है उस का घर बिना जी न घबड़ायगा। (प्रकाश) मित्र! उस पर अपराध क्या ठहराया?

विराधगुप्त।—कि इसी दुष्ट ने राक्षस की भेजी विषकन्या से पर्व्वतेश्वर को मार डाला।

राक्षस।—(आप ही आप) वाहरे कौटिल्य वाह! क्यों न हो।

निज कलंक हम पै धर्‌यो, हत्यौ अर्द्ध बटवार।
नीतिबीज तुव एक ही, फल उपजवत हजार॥

(प्रकाश) हां, फिर?

विराधगुप्त।—फिर चन्द्रगुप्त के नाश को इस ने दारुवर्म्मा-

दिक नियत किये थे यह दोष लगा कर शकटदास को सूली दे दी।

राक्षस।—(दुःख से) हा मित्र! शकटदास! तुम्हारी बड़ी अयोग्य मृत्यु हुई। अथवा स्वामी के हेतु तुम्हारे प्राण गए। इस से कुछ शोच नहीं है, शोच हमीं लोगों का है कि स्वामी के मरने पर भी जीना चाहते हैं।

विराधगुप्त।—मन्त्री! ऐसा न सोचिये, आप स्वामी का काम कीजिये।

राक्षस।—मित्र!

केवल है यह सोक, जीव लोभ अब लौं बचे।
स्वामि गयो परलोक, पै कृतघ्न इतही रहे॥

विराधगुप्त।—महाराज! ऐसा नहीं (केवल यह ऊपर का छन्द फिर से पढ़ता है) *।

राक्षस।-मित्र! कहो, और भी सैकड़ों मित्र का नाश सुनने को ये पापी कान उपस्थित हैं।

विराधगुप्त।—यह सब सुन कर चन्दनदास ने बड़े कष्ट से आप के कुटुम्ब को छिपाया।

राक्षस।-मित्र! उस दुष्ट चाणक्य के तो चन्दनदास ने विरुद्ध ही किया।

विराधगुप्त।—तो मित्र का बिगाड़ करना तो अनुचित ही था।

राक्षस।—हां, फिर क्या हुआ?

विराधगुप्त।—तब चाणक्य ने आप के कुटुम्ब चन्दनदास

---

* अर्थात् जो लोग जीवलोभ से बचे हैं वे कृतघ्न हैं, आप तो स्वामी के कार्य्यसाधन को जीते हैं आप क्यों कतघ्न हैं।

से बहुत मांगा पर उस ने नहीं दिया इस पर उस दुष्ट ब्राह्मण ने—

राक्षस।—(घबड़ा कर) क्या चन्दनदास को मार डाला ?

विराधगुप्त।—नहीं, मारा तो नहीं, पर स्त्री पुत्र धन समेत बांध कर बन्दीघर में भेज दिया।

राक्षस।—तो क्या ऐसा सुखी हो कर कहते हो कि बन्धन में भेज दिया ? अरे ! यह कहो कि मन्त्री राक्षस को कुटुम्ब सहित बांध रक्खा है।

(प्रियम्बदक आता है।)

प्रियम्बदक।—जय जय महाराज ! बाहर शकटदास खड़े हैं।

राक्षस।—(आश्चर्य से) सच ही !

प्रियम्बदक।—महाराज ! आप के सेवक कभी मिथ्या बोलते हैं ?

राक्षस।—मित्र विराधगुप्त ! यह क्या ?

विराधगुप्त।—महाराज ! होनहार जो बचाया चाहे तो कौन मार सकता है ?

राक्षस।—प्रियम्बदक ! अरे जो सच ही कहता है तो उन को झटपट लाता क्यों नहीं ?

प्रियम्बदक।—जो आज्ञा (जाता है)।

(सिद्धार्थक के संग शकटदास आता है।)

शकटदास।—देख कर (आप ही आप)

वह सूली गड़ी जो बड़ी दृढ़ कै,
सोई चन्द्र को राज थिरयो मन तें।
लपटी वह फांस की डोर सोई,
मनु श्री लपटी वृषलै मन तें॥
बजी डौंडी निरादर की नृप नन्द को,
सोऊ लख्यो इन आंखन तें।

नहिं जानि परै इतनोहूं भए,
केहि हेत न प्रान कढ़े तन तें॥

(राक्षस को देख कर) यह मन्त्री राक्षस बैठे हैं। अहा!

नन्द गए हू नहिं तजत, प्रभुसेवा को स्वाद।
भूमि बैठि प्रगटत मनहुं, स्वामिभक्त मरजाद॥

(पास जाकर) मन्त्री की जय हो।

राक्षस।—(देख कर आनन्द से) मित्र शकटदास! आओ मुझ से मिल लो, क्योंकि तुम दुष्ट चाणक्य के हाथ से बच के आए हो।

शकटदास। (मिलता है)।

राक्षस।—(मिल कर) यहां बैठो।

शकटदास।—जो आज्ञा (बैठता है)।

राक्षस।—मित्र शकटदास! कहो तो यह आनन्द की बात कैसे हुई?

शकटदास।—(सिद्धार्थक को दिखा कर) इस प्यारे सिद्धार्थक ने सूली देनेवाले लोगों को हटा कर मुझ को बचाया।

राक्षस।—(आनन्द से) वाह सिद्धार्थक! तुम ने काम तो अमूल्य किया है, पर भला! तब भी यह जो कुछ है सो लो (अपने अंग से आभरण उतार कर देता है)।

सिद्धार्थक।—(ले कर आप ही आप) चाणक्य के कहने से मैं सब करूंगा (पैर पर गिर के प्रकाश) महाराज! यहां मैं पहिले पहल आया हूं इस से मुझे यहां कोई नहीं जानता कि मैं उस के पास इन भूषणों को छोड़ जाऊं, इस से आप इसी अंगूठी से इस पर मोहर कर के इस को अपने ही पास रक्खें, मुझे जब काम होगा ले जाऊंगा।

राक्षस।—क्या हुआ। अच्छा शकटदास! जो यह कहता है वह करो।

शकटदास।—जो आज्ञा (मोहर पर राक्षस का नाम देख कर धीरे से) मित्र! यह तो तुम्हारे नाम की मोहर है।

राक्षस।–(देख कर बड़े शोच से, आप ही आप) हाय २ इस को तो जब मैं नगर से निकला था तो ब्राह्मणी ने मेरे स्मरणार्थ ले लिया था वह इस के हाथ कैसे लगी? (प्रकाश) सिद्धार्थक! तुम ने यह कैसे पाई?

सिद्धार्थक।—महाराज! कुसुमपुर में जो चन्दनदास जौहरी हैं उन के द्वार पर पड़ी पाई।

राक्षस।—तो ठीक है।

सिद्धार्थक।–महाराज! ठीक क्या है?

राक्षस।—यही कि ऐसे धनिकों के घर बिना यह वस्तु और कहां मिलै।

शकटदास।—मित्र! यह मन्त्री जी के नाम की मोहर है, इस से तुम इस को मन्त्री को दे दो तो इस के बदले तुम्हें बहुत पुरस्कार मिलैगा।

सिद्धार्थक।—महाराज! मेरे ऐसे भाग्य कहां कि आप इसे लें।

(मोहर देता है)

राक्षस।—मित्र शकटदास! इसी मुद्रा से सब काम किया करो।

शकटदास।—जो आज्ञा।

सिद्धार्थक।—महाराज! मैं कुछ बिनती करूं?

राक्षस–हां हां, अवश्य करो।

सिद्धार्थक।—यह तो आप जानते ही हैं कि उस दुष्ट चाणक्य को बुराई कर के फिर मैं पटने में घुस नहीं

सकता इस से कुछ दिन आप ही के चरणों की सेवा किया चाहता हूं ।

राक्षस ।—बहुत अच्छी बात है, हम लोग तो ऐसा चाहते ही थे, अच्छा है, यहीं रहो ।

सिद्धार्थक ।—(हाथ जोड़ कर) बड़ी कृपा हुई ।

राक्षस ।—मित्र शकटदास ! ले जाओ इस को उतारो और सब भोजनादिक का ठीक करो ।

शकटदास ।—जो आज्ञा ।

(सिद्धार्थक को ले कर जाता है)

राक्षस ।—मित्र विराधगुप्त ! अब तुम कुसुमपुर का वृत्तान्त जो छूट गया था सो कहो । वहां के निवासियों को मेरी बातैं अच्छी लगती हैं कि नहीं ?

विराधगुप्त ।—बहुत अच्छी लगती हैं, वरन वे सब तो आप ही के अनुयायी हैं ।

राक्षस ।—ऐसा क्यों ?

विराधगुप्त ।—इस का कारण यह है कि मलयकेतु के निकलने के पीछे चाणक्य को चन्द्रगुप्त ने कुछ चिढ़ा दिया और चाणक्य ने भी उस की बात न सह कर चन्द्रगुप्त को आज्ञा भंग कर के उस को दुःखी कर रक्खा है, यह मैं भली भांति जानता हूं ।

राक्षस ।—(हर्ष से) मित्र विराधगुप्त ! तो तुम इसी सँपेरे के भेस से फिर कुसुमपुर जाओ और वहां मेरा मित्र स्तनकलस नामक कवि है उस से कह दो कि चाणक्य के आज्ञा भंगादिकों के कवित्त बना बना कर चन्द्रगुप्त को बढ़ावा देता रहै और जो कुछ काम हो जाय वह करभक से कहला भेजे ।

विराधगुप्त ।—जो आज्ञा (जाता है) ।

(प्रियम्वदक आता है)

प्रियम्वदक। जय हो महाराज! शकटदास कहते हैं कि यह तीन आभूषण बिकते हैं इन्हें आप देखें।

राक्षस।—(देख कर) अहा यह तो बड़े मूल्य के गहने हैं, अच्छा, शकटदास से कह दो कि दाम चुका कर ले लें।

प्रियम्वदक।—जो आज्ञा (जाता है)।

राक्षस।—तो अब हम भी चल कर करभक को कुसुमपुर भेजें (उठता है)। अहा! क्या उस मृतक चाणक्य से चन्द्रगुप्त से बिगाड़ हो जायगा, क्यों नहीं? क्योंकि सब कामों को सिद्ध ही देखता हूं—

चन्द्रगुप्त निज तेज बल, करत सबन को राज।
तेहि समझत चाणक्य यह, मेरो दियो समाज॥
अपनो २ करि चुके, काज रह्यो कछु जौन।
अब जो आपुस में लड़ैं, तौ बड़ अचरज कौन॥

(जाता है)

॥ इति द्वितीयाङ्क ॥

तृतीय अङ्क।

(स्थान - राजभवन की अटारी)

कंचुकी आता है।

कंचुकी।-हे रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों।
सो मिटे इन्द्रीगन सहित है सिथिल अतिही छोभ सों॥
मानत कह्यो कोउ नाहिं सब अङ्ग अङ्ग ढीले है गए!
तौहू न तृष्णे ! क्यों तजत तू मोहि बूढ़ोहू भए॥

(आकाश की ओर देख कर) अरे ! अरे ! सुगांगप्रसाद के लोगो ! सुनो। महाराज चन्द्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी है कि कौमुदी महोत्सव के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूं, इस से उस अटारी को बिछौने इत्यादि से सज रक्खो, देर क्यों करते हो (आकाश की ओर देख कर) क्या कहा ? कि क्या महाराज चन्द्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी महोत्सव अब की न होगा ? दुर दइमारो ! क्या मरने को लगे हो ? शीघ्रता करो।

कबित्त।

बहु फूल की माल लपेट कै खंभन धूप सुगंध सों ताहि धुपाइये। तापैं चहूं दिसि चंद छपा से सुसोभित चौंर घने लटकाइये॥ भार सों चारु सिंहासन के मुरछा में धरा परी धेनु सी पाइये। छींटि के तापैं गुलाब मिल्यौ जल चन्दन ता कहँ जाइ जगाइये॥

(आकाश की ओर देख कर) क्या कहते हो - कि हम

लोग अपने काम में लग रहे हैं? अच्छा २ झटपट सब सिद्ध करो देखो! वह महाराज चन्द्रगुप्त आ पहुंचे।

बहु दिन श्रम करि नन्द नृप, बह्यो राज धुर जौन।
बालेपन ही में लियौ, चन्द सीस निज तौन॥
डिगत न नेकहु बिषम पथ, दृढ़ प्रतिज्ञ दृढ़ गात।
गिरन चहत सम्हरत बहुरि, नेकु न जिय घबरात॥

(नेपथ्य में) इधर महाराज इधर।

(राजा और प्रतिहारी आते हैं)

राजा।—(आप ही आप) राज उसी का नाम है जिस में अपनी आज्ञा चले दूसरे के भरोसे राज करना भी एक बोझा ढोना है। क्योंकि—

जो दूजे को हित करै, तौ खोवै निज काज।
जौ खोयो निज काज तौ, कौन बात को राज॥
दूजे ही को हित करै, तौ वह परबस मूढ़।
कठपुतरी सो स्वाद कछु, पावै कबहुं न कूढ़॥

और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सम्हालना बहुत कठिन है। क्योंकि—

क्रूर सदा भाखत पियहिं, चञ्चल सहज सुभाव।
नर गुन औगुन नहिं लखति, सज्जन खल सम भाव॥
डरति सूर सों भीरु कहं, गिनति न कछु रति*हीन।
बारनारि अरु लच्छमी, कहौ कौन बस कीन॥

यद्यपि गुरु ने कहा है कि तू झूठी कलह कर के स्वतन्त्र ही कर अपना प्रबन्ध आप कर ले, पर यह तो बड़ा पाप सा है। अथवा गुरुजी के उपदेश पर चलने से हम लोग तो सदा ही स्वतन्त्र हैं।

---

* रति का यहां प्रीति अर्थ है।

जब लौं बिगारै काज नहिं तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै।
पै शिष्य जाइ कुराह तौ गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै॥
तासों सदा गुरु वाक्य बस हम नित्य पर आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु से सन्त जनही जगत में स्वाधीन हैं॥

(प्रकाश) अजी वैहीनर! "सुगांगप्रसाद" का मार्ग दिखाओ।

कंचुकी।—इधर आइये महाराज इधर!

राजा।—(आगे बढ़ता है।)

कंचुकी।—महाराज! सुगांगप्रसाद की यही सीढ़ी है।

राजा।—(ऊपर चढ़ कर) अहा! शरद ऋतु की शोभा से सब दिशाएं कैसी सुन्दर हो रही हैं!

सरद विमल ऋतु सोहई, निरमल नील अकास।
निसानाथ पूरन उदित, सोलह कला प्रकास॥
चारु चमेली बन रहीं, महमह महँकि सुबास।
नदी तीर फूले लखौ, सेत सेत बहु कास॥
कमल कमोदिनि सरन में, फूले सोभा देत।
भौंर बृन्द जापैं लखौ, गूँजि गूँजि रस लेत॥
वसन चांदनी चन्द्मुख, उडुगन मोती माल।
कास फूल मधु हास यह, सरद किधौं नव बाल॥

(चारो ओर देख कर) कंचुकी! यह क्या? नगर में "चन्द्रिकोत्सव" कहीं नहीं मालूम पड़ता; क्या तू ने सब लोगों से ताकीद कर के नहीं कहा था कि उत्सव होय?

कंचुकी।—महाराज! सब से ताकीद कर दी थी।

राजा।—तो फिर क्यों नहीं हुआ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी?

कंचुकी।—(कान पर हाथ रख कर) राम राम! भला नगर क्या, इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आप की आज्ञा न मानै?

राजा।—तो फिर चन्द्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ? देख न—

गज रथ बाजि सजे नहीं, बँधी न बन्दनवार।
तने बितान न कहुँ नगर, रञ्जित कहुँ न द्वार॥
नर नारी डोलत न कहुँ, फूल माल गल डार।
नृत्य वाद धुनि गीत नहिं, सुनियत श्रवन मँझार॥

कंचुकी।—महाराज! ठीक है—ऐसा ही है।

राजा।—क्यों ऐसा ही है?

कंचुकी।—महाराज योंहीं है।

राजा।—स्पष्ट क्यों नहीं कहता?

कंचुकी।—महाराज! चन्द्रिकोत्सव बन्द किया गया है।

राजा।—(क्रोध से) किस ने बन्द किया है?

कंचुकी।—(हाथ जोड़ कर) महाराज! यह मैं नहीं कह सकता।

राजा।—कहीं आर्य्य चाणक्य ने तो नहीं बन्द किया?

कंचुकी।—महाराज! और किस को अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी?

राजा।—(अत्यन्त क्रोध से) अच्छा, अब हम बैठेंगे।

कंचुकी।—महाराज! यह सिंहासन है, विराजिए।

राजा।—(बैठ कर क्रोध से) अच्छा कंचुकी! आर्य्य चाणक्य से कह कि "महाराज आप को देखा चाहते हैं।"

कंचुकी।—जो आज्ञा (बाहर जाता है)।

(एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखाई पड़ता है।)

चाणक्य।—(आप ही आप) दुष्ट राक्षस हमारी बराबरी करता है, वह जानता है कि—

जिमि हम नृप अपमान सों, महा क्रोध उर धारि।
करी प्रतिज्ञा नन्द नृप, नासन की निरधारि॥

सो नृप नन्द हि पुत्र सह, नासि करी हम पूर्ण ।
चन्द्रगुप्त राजा कियौ, करि राक्षस मद चूर्ण ॥
तिमि सोऊ मोहि नीति बल, छलन चहत इति चन्द ।
पै मो आछत यह जतन, वृथा तासु अति मन्द ॥

(ऊपर देख कर क्रोध से) अरे राक्षस ! छोड़ छोड़ यह व्यर्थ का श्रम; देख—

जिमि नृप नन्दहि मारि कै, वृषलहि दीनो राज ।
आइ नगर चाणक्य किय, दुष्ट सर्प सो काज ॥
तिमि सोऊ नृप चन्द्र को, चाहत करण बिगार ।
निज लघु मति लांघ्यौ चहत, मो बल बुद्धि पहार ॥

(आकाश की ओर देख कर) अरे राक्षस ! मेरा पीछा छोड़ ।

क्योंकि—

राज काज मन्त्री चतुर, करत बिना अभिमान ।
जैसो तुव नृप नन्द हो, चन्द्र न तौन समान ॥
तुम कछु नाहिं चाणक्य जो, साधौ कठिनहु काज ।
तासों हम सो बैर करि, नहिं सरि है तुव राज ॥

अथवा इस में तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिए । क्योंकि—

मम भागुरायन आदि भृत्यन मलय राख्यौ घेरिकै ।
तिमि गए सिद्धारथक ऐहैं तेउ काज निबेरिकै ॥
अब लखहु करि छल कलह नृपसों भेद बुद्धि उपाइकै ।
पर्व्वत जनन सों हम बिगारत राक्षसहिं उलटाइकै ॥

कंचुकी ।—हा ! सेवा बड़ी कठिन होती है ।

नृप सों सचिव सों सब मुसाहिब गनन सों डरते रहौ ।
पुनि बिटहु जे अति पास के तिनकौं कह्यौ करते रहौ ॥
मुख लखत बीतत दिवस निसि भय रहत संकित प्रान है ।
निज उदर पूरन हेतु सेवा श्वान वृत्ति समान है ॥

[चारो ओर घूम कर, देख कर]

अहा ! यही आर्य्य चाणक्य का घर है तो चलूं (कुछ आगे बढ़ कर और देख कर)।

अहाहा ! यह राजाधिराज श्री मन्त्री जी के घर की सम्पत्ति है। जो—

कहुँ परे गोमय शुष्क कहुँ सिल परीं सोभा दै रही।
कहुँ तिल कहुं जव रासि लागी बँटत जो भिक्षा लही॥
कहुँ कुस परे कहुँ समिध सूखत भार सों ताके नयो।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसो झुकि गयो॥

महाराज चन्द्रगुप्त को भाग्य से ऐसा मन्त्री मिला है—

बिन गुनहूँ के नृपन को, धन हित गुरुजन धाइ।
सूखो मुख करि झूठहीं, बहु गुन कहहिं बनाइ॥
पै जिन को तृष्णा नहीं, ते न लबार समान।
तिन सों तृन सम धनिक जन, पावत कबहुं न मान॥

(देखकर डर से) अरे आर्य्य चाणक्य यहां बैठे हैं, जिन्हों ने—

लोक धरषि चन्द्रहि कियो, राजा नन्द गिराइ।
होत प्रात रवि के कढ़त, जिमि ससि तेज नसाइ॥

(प्रगट दण्डवत् कर के) जय हो ! आर्य्य की जय हो !!

चाणक्य।—(देख कर) कौन है वैहीनर ! क्यों आया है ?

कंचुकी।—आर्य्य ! अनेक राजगणों के मुकुट माणिक्य से सर्वदा जिन के पदतल लाल रहते हैं उन महाराज चन्द्रगुप्त ने आप के चरणों में दण्डवत् कर के निवेदन किया है कि "यदि आप के किसी कार्य्य में विघ्न न पड़े तो मैं आप का दर्शन किया चाहता हूं।"

चाणक्य।—वैहीनर ! क्या वृषल मुझे देखा चाहता है ? क्या मैं ने कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध कर दिया है यह वृषल नहीं जानता ?

कंचुकी।—आर्य्य, क्यों नहीं।

चाणक्य।—(क्रोध से) हैं! किस ने कहा बोल तो?

कंचुकी।—(भय से) महाराज प्रसन्न हों। जब सुगांग-प्रसाद की अटारी पर गए थे तो देख कर महाराज ने आप ही जान लिया कि कौमुदी महोत्सव अबकी नहीं हुआ।

चाणक्य।—अरे ठहर, मैं ने जाना यह तुम्हीं लोगों ने वृषल का जी मेरी ओर से फेर कर उसे चिढ़ा दिया है, और क्या।

कंचुकी।—(भय से नीचा मुंह कर के चुप रह जाता है।)

चाणक्य।—अरे राज के कारवारियों का चाणक्य के ऊपर बड़ा ही विद्वेष पक्षपात है। अच्छा, वृषल कहां है? बता।

कंचुकी।—(डरता हुआ) आर्य्य सुगांगप्रसाद की अटारी पर से महाराज ने मुझे आप के चरणों में भेजा है।

चाणक्य।—(उठकर) कंचुकी! सुगांगप्रसाद का मार्ग बता।

कंचुकी।—इधर महाराज (दोनों घूमते हैं)।

कंचुकी।—महाराज! यह सुगांगप्रसाद की सीढ़ियां हैं चढ़ें। (दोनों सुगांगप्रसाद पर चढ़ते हैं और चाणक्य के घर का परदा गिर के छिप जाता है।)

चाणक्य।—(चढ़ कर और चन्द्रगुप्त को देख कर प्रसन्नता से आप ही आप) अहा! वृषल सिंहासन पर बैठा है—

हीन नन्द सों रहित नृप, चन्द्र करत जेहि भोग।
परम होत सन्तोष लखि, आसन राजा जोग॥

(पास जाकर) जय हो वृपल की।

चन्द्रगुप्त।—(उठ कर और पैरों पर गिर कर) आर्य्य! चन्द्रगुप्त दण्डवत् करता है।

चाणक्य।—(हाथ पकड़ कर उठाकर) उठो बेटा उठो।

जहँ लौं हिमालय के शिखर सुरधुनी कन सीतल रहैं।
जहँ लौं विविध मणिखण्ड मंडित समुद दक्षिण दिसि बहैं॥
तहँ लौं सबै नृप आइ भय सों तोहि सीस झुकावहीं।
तिन के मुकुट मणि रँगे तुव पद निरखि हम सुख पावहीं॥

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! आप की कृपा से ऐसा ही हो रहा है। बैठिए।

(दोनों यथास्थान बैठते हैं)

चाणक्य।—वृषल! कहो मुझे क्यौं बुलाया है?

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य के दर्शन से कृतार्थ होने को।

चाणक्य।—[हंस कर] भया, बहुत शिष्टाचार हुआ, अब बताओ क्यौं बुलाया है? क्यौंकि राजा लोग किसी को बेकाम नहीं बुलाते।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! आप ने कौमुदी महोत्सव के न होने में क्या फल सोचा है?

चाणक्य।—[हंस कर] तो यही उलाहना देने को बुलाया है न?

चन्द्रगुप्त।—उलाहना देने को कभी नहीं।

चाणक्य। - तो क्यौं?

चन्द्रगुप्त। पूछने को।

चाणक्य।—जब पूछना ही है तब तुम को इस से क्या? शिष्य को सर्व्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए।

चन्द्रगुप्त।—इस में कोई सन्देह नहीं पर आप की रुचि बिना प्रयोजन नहीं प्रवृत्त होती, इस से पूछा।

चाणक्य।—ठीक है, तुम ने मेरा आशय जान लिया, बिना प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी ओर कभी फिरती ही नहीं।

चन्द्रगुप्त।—इसी से तो सुनने बिना मेरा जी अकुलाता है।

चाणक्य।—सुनो, अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं—एक राजा के भरोसे, दूसरा मन्त्री के भरोसे, तीसरा राजा और मन्त्री दोनों के भरोसे; सो तुम्हारा राज तो केवल सचिव के भरोसे है, फिर इन बातों के पूछने से क्या? व्यर्थ मुंह दुखाना है, यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जानें।

(राजा क्रोध से मुंह फेर लेता है)

(नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं)

प्रथम वै०।—(राग बिहाग) अहो यह शरद शम्भु है आई।

कास फूल फूले चहुँ दिसि तें सोई मनु भस्म लगाई॥
चन्द उदित सोई सीस अभूषन सोभा लगत सुहाई।
तासों रञ्जित घन पटली सोई मनु गज खाल बनाई॥
फूले कुसुम मुण्ड माला सोइ सोहत अति धवलाई।
राजहंस सोभा सोइ मानों हास बिभव दरसाई॥
अहो यह शरद शम्भु बनि आई।

(और भी)

(राग कलिंगड़ा) हरौ हरि नयन तुम्हारी बाधा।
सरदागम लखि सेस अंक तें जगे जगत शुभ साधा॥
कछु कछु खुले मुंदे कछु सोभित आलस भरि अनियारे।
अरुन कमल से मद के माते थिर भे जदपि ढरारे॥
सेस सीस मनि चमक चकौंधन तनिकहुं नहिं सकुचाहीं।
नींद भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमला उर माहीं॥
हरौ हरि नैन तुम्हारी बाधा।

दूसरा वै०।—(कड़खे की चाल में)

अहो, जिन कों बिधि सब जीव सों, बढ़ि दीनो जग काज।
अरे, दान सलिल वारे सदा, जे जीतहिं गजराज॥

अहो, झुक्यौ न जिन को मान ते, नृपवर जग सिरताज।
अरे, सहहिं न आज्ञा भंग जिमि दन्तपात मृगराज॥

(और भी)

अरे, केवल बहु गहिना पहिरि, राजा होइ न कोय।
अहो, जाकी नहीं आज्ञा टरै, सो नृप तुम सम होय॥

चाणक्य।—(सुन कर आप ही आप) भला पहिले ने तो देवता रूप शरद के वर्णन में आशीर्वाद दिया, पर इस दूसरे ने क्या कहा? [कुछ सोच कर] अरे जाना यह सब राक्षस की करतूत है। अरे दुष्ट राक्षस! क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो नहीं गया है?

चन्द्रगुप्त।—अजी वैहीनर! इन दोनों गानेवालों को लाख लाख मोहर दिलवा दो।

वैहीनर।—जो आज्ञा महाराज (उठ कर जाना चाहता है)।

चाणक्य।—वैहीनर, ठहर अभी मत जा। वृषल, यह अर्थ कुपात्र को इतना क्यों देते हो?

चन्द्रगुप्त।—आप मुझे सब बातों में योंही रोक दिया करते हैं, तब यह मेरा राज क्या है वरन उलटा बन्धन है।

चाणक्य।—वृषल! जो राजा आप असमर्थ होते हैं उन में इतना ही तो दोष है, इस से जो ऐसी इच्छा हो तो तुम अपने राज का प्रबन्ध आप कर लो।

चन्द्रगुप्त।—बहुत अच्छा, आज से मैं ने सब काम सम्हाला।

चाणक्य।—इस से अच्छी और क्या बात है, तो मैं भी अपने अधिकार पर सावधान हूँ।

चन्द्रगुप्त।—जब यही है तो पहिले मैं पूछता हूं कि कौमुदी महोत्सव का निषेध क्यों किया गया?

चाणक्य।—मैं भी यही पूछता हूँ कि उस के होने का प्रयोजन क्या था?

चन्द्रगुप्त।—पहिले तो मेरी आज्ञा का पालन।

चाणक्य।—मैं ने भी आप के आज्ञा के अपालन के हेतु ही कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध किया।

क्योंकि—

आइ चारहु सिन्धु के, छोरहु के भूपाल।
जो सासन सिर पैं धरैं, जिमि फूलन की माल॥
तेहि हम जौ कछु टारहीं, सोउ तुव हित उपदेस।
जासों तुमरो बिनय गुन, जग मैं बढ़ै नरेस॥

चन्द्रगुप्त।—और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूं।

चाणक्य।—वह भी कहता हूं।

चन्द्रगुप्त।—कहिए।

चाणक्य।—शोणोत्तरे! अचलदत्त कायस्थ से कहो कि तुम्हारे पास जो भद्रभट इत्यादिकों का लेखपत्र है वह मांगा है।

प्र०।—जो आज्ञा (बाहर से पत्र लाकर देती है)।

चाणक्य।—वृषल! सुनो।

चन्द्रगुप्त।—मैं उधर ही कान लगाए हूं।

चाणक्य (पढ़ता है) स्वस्ति परम प्रसिद्ध नाम महाराज श्री चन्द्रगुप्त देव के साथी जो अब उन को छोड़ कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए हैं उन का यह प्रतिज्ञा-पत्र है। पहिला गजाध्यक्ष, भद्रभट, अश्वाध्यक्ष, पुरुष-दत्त, महाप्रतिहार चन्द्रभानु का भानजा हिंगुरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त, महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालव के राजा का पुत्र रोहि-ताक्ष और क्षत्रियों में सब से प्रधान बिजयवर्म्मा (आप ही) ये हम सब लोग यहां महाराज का काम साव-

धानों से साधते हैं (प्रकाश) यही इस पत्र में लिखा है। सुना ?

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य ! मैं इन सभों के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूं।

चाणक्य।—वृषल ! सुनो-वह जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष थे वह रात दिन मद्य स्त्री और जूआ में डूब कर अपने काम से निरे बेसुध रहते थे इस से मैं ने उन से अधिकार लेकर केवल निर्वाह के योग्य जीविका कर दी थी, इस से उदास हो कर कुमार मलयकेतु के पास चले गए और वहां अपना अपना कार्य्य सुना कर फिर उसी पद पर नियुक्त हुए हैं, और हिंगुरात और बलगुप्त ऐसे लालची हैं कि कितना भी दिया पर अन्त में मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे कि यहीं बहुत मिलैगा, और जो आप का लड़कपन का सेवक राजसेन था उस ने आप की थोड़ी ही कृपा से हाथी घोड़ा घर और धन सब पाया पर इस भय से भाग कर मलयकेतु के पास चला गया कि यह सब छिन न जाय, और वह जो सिंह बलदत्त सेनापति का छोटा भाई भागुरायण है उस से पर्व्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उस ने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि "जैसे विश्वासघात कर के चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालेगा इस से यहां से भाग चलो," ऐसे ही बहकाकर कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आप के वैरी चन्दनदासादिकों को दण्ड हुआ तब मारे डर के मलयकेतु के पास जा रहा, उस ने भी यह समझ कर कि इस ने मेरे प्राण बचाए और मेरे पिता का परिचित भी है उस को कृतज्ञता से

अपना अन्तरंगी मन्त्री बनाया है, और वह जो रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा थे वह ऐसे अभिमानी थे कि जब आप उन के और नातेदारों का आदर करते थे तो वह कुढ़ते थे इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गए, बस यही उन लोगों की उदासी का कारण है।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! जब इन सब के भागने का उद्यम जानते ही थे तो क्यों न रोक रक्खा?

चाणक्य।—ऐसा कर नहीं सके।

चन्द्रगुप्त।—क्या आप इस में असमर्थ हो गए वा कुछ उस में भी प्रयोजन था?

चाणक्य।—असमर्थ कैसे हो सकते हैं? उस में भी कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! वह प्रयोजन मैं सुना चाहता हूं।

चाणक्य।—सुनो और भूल मत जाओ।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! मैं सुनता हुई हूँ, भूलूँगा भी नहीं, कहिए।

चाणक्य।—अब जो लोग उदास हो गए हैं या बिगड़ गए हैं उन के दो ही उपाय हैं या तो फिर से उन पर अनुग्रह करैं या उन को दण्ड दें और भद्रभट पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अब उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उन को उन का अधिकार दिया जाय और यह हो नहीं सकता, क्योंकि उन को मृगया मद्य पानादिक का जो व्यसन है इस से इस योग्य नहीं हैं कि हाथी घोड़ों को सम्हालैं और सब सैना की जड़ हाथी घोड़े ही हैं वैसे ही हिंगुरात बलगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है क्योंकि उन को सब राज्य पाने से भी सन्तोष न होगा, और राजसेन भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे हैं ये तो प्रसन्न होई नहीं

सकते, और रोहिताक्ष विजयवर्म्मा का तो कुछ पूछना ही नहीं है, क्योंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते हैं और उन का कितना भी मान करो उन्हें थोड़ा ही दिखलाता है तो इस का क्या उपाय है। यह तो अनुग्रह का वर्णन हुआ, अब दण्ड का सुनिये, कि यदि हम इन सबों को प्रधान पद पाकर के जो बहुत दिनों से नन्दकुल के सर्व्वदा शुभाकांक्षी और साथी रहे दण्ड दे कर दुखी करें तो नन्दकुल के साथियों का हम पर से विश्वास उठ जाय इस से छोड़ ही देना योग्य समझा सो इन्हीं सब हमारे भृत्यों के पक्षपाती बन कर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बड़ी सहायता पा कर और अपने पिता के बध से क्रोधित हो कर पर्व्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगों से लड़ने को उद्यत हो रहा है, सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है उत्सव का समय नहीं। इस से गढ़ के संस्कार के समय कौमुदी महोत्सव क्या होगा? यही सोच कर उस का प्रतिषेध कर दिया।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य? मुझे अभी इस में बहुत कुछ पूछना है।

चाणक्य।—भली भांति पूछो, क्योंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है।

चन्द्रगुप्त।—यह पूछता हूँ—

चाणक्य।—हां! मैं भी कहता हूँ।

चन्द्रगुप्त।—यह कि हम लोगों के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है उसे आप ने भागती समय क्यों नहीं पकड़ा?

चाणक्य।—वृषल! मलयकेतु के भागने के समय भी दो ही उपाय थे या तो मेल करते या दण्ड देते, जो मेल करते

तो आधा राज देना पड़ता और जो दण्ड देते तो फिर यह हम लोगों की कृतघ्नता सब पर प्रसिद्ध हो जाती कि इन्हीं लोगों ने पर्व्वतक को भी मरवा डाला और जो आधा राज दे कर अब मेल कर लें तौ भी उस बिचारे पर्व्वतक के मारने का पाप ही पाप हाथ लगे। इस से मलयकेतु को भागती समय छोड़ दिया।

चन्द्रगुप्त।—और भला राक्षस इसी नगर में रहता था उस का भी आप ने कुछ न किया इस का क्या उत्तर है?

चाणक्य।—सुनो, राक्षस अपने स्वामी की स्थिर भक्ति से और यहां के बहुत दिन के रहने से यहां के लोगों का और नन्द के सब साथियों का विश्वासपात्र हो रहा है और उस का स्वभाव सब लोग जान गए हैं और उस में बुद्धि और पौरुष भी है वैसे ही उस के सहायक भी हैं और कोपबल भी है, इस से जो वह यहां रहै तो भीतर के सब लोगों को फोड़ कर उपद्रव करै और जो यहां से दूर रहै तो वह ऊपरी जोड़ तोड़ लगावै पर उन के मिटाने में इतनी कठिनाई न हो इस से उस के जाने की समय उपेक्षा कर दी गई।

चन्द्रगुप्त।—तो जब वह यहां था तभी उस को वश में क्यौं नहीं कर लिया?

चाणक्य।—बश क्या कर लें अनेक उपायों से तो वह छाती में गड़े कांटे की भांति निकाल कर दूर किया गया है! उसे दूर करने में और कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त।—तो बल से क्यौं नहीं पकड़ रक्खा?

चाणक्य।—वह राक्षस ऐसा नहीं है, उस पर जो बल किया जाय तो या तो वह आप मारा जाय या तुम्हारा नाश कर दे; और—

हम खोवैं इक महत नर जो वह पावै नास।
जो वह नासै सैन तुव तौहू जिय अति त्रास॥
तासों कल बल करि बहुत अपने बस करि वाहि।
जिमि गज पकरैं सुघर तिमि बाधैंगे हम ताहि॥

चन्द्रगुप्त।—मैं आप की बात तो नहीं काट सकता, पर इस से तो मन्त्री राक्षस ही बढ़ चढ़ के जान पड़ता है।

चाणक्य।—(क्रोध से) 'आप नहीं' इतना क्यों छोड़ दिया? ऐसा कभी नहीं है उस ने क्या किया है कहो तो?

चन्द्रगुप्त।—जो आप न जानते हों तो सुनिए कि वह महात्मा—

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुशलात।
जब लौं जित चाह्यौ रह्यौ धारि सीस पैं लात॥
डौंड़ी फेरने के समय निज बल जय प्रगटाय।
मेरे बल के लोग कों दीनों तुरत हराय॥
मोहे परिजन रीति सों जाके सब बिनु त्रास।
जौ मोपैं निज लोकहू, आनहिं नहिं विश्वास॥

चाणक्य।—(हंस कर) वृषल! राक्षस ने यह सब किया?

चन्द्रगुप्त।—हां! हां! अमात्य राक्षस ने यह सब किया।

चाणक्य।—तो हम ने जाना, जिस तरह नन्द का नाश कर के तुम राजा हुए वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा।

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य! यह उपालम्भ आप को नहीं शोभा देता, करनेवाला सब दैव है।

चाणक्य।—रे कृतघ्न!

अतिहि क्रोध करि खोलि कै, सिखा प्रतिज्ञा कीन।
सो सब देखत भुव करी, नव नृप नन्द विहीन॥
घिरी स्वान अरु गीध सों, भय उपजावनिहारि।
जारि नन्दहू नहिं भई, सान्त मसान दवारि॥

चन्द्रगुप्त।—यह सब किसी दूसरे ने किया।
चाणक्य।—किस ने?
चन्द्रगुप्त।—नन्दकुल के द्वेषी दैव ने।
चाणक्य।—दैव तो मूर्ख लोग मानते हैं।
चन्द्रगुप्त।—और विद्वान् लोग भी यद्वा तद्वा करते हैं।
चाणक्य।—(क्रोध नाट्य कर के) अरे वृषल! क्या नौकरों की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है?

खुली सिखाहु बाँधिवे चञ्चल भे पुनि हाथ।

(क्रोध से पैर पृथ्वी पर पटक कर)

घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ॥
नन्द नसे सों निरुज ह्वै तू फूल्यौ गरवाय।
सो अभिमान मिटाइहौं तुरतहि तोहि गिराय॥

चन्द्रगुप्त।—(घबड़ा कर) अरे! क्या आर्य्य को सचमुच क्रोध आ गया!

फर फर फरकत अधर पुट भए नयन जुग लाल।
चढ़ी जाति भौंहैं कुटिल स्वांस तजत जिमि व्याल॥
मनहुं अचानक रुद्र दृग खुल्यौ त्रितिय दिखरात।

(आवेग सहित)

धरनी धार्‌यौ बिनु धसे हा हा किमि पदघात॥

चाणक्य।—(नकली क्रोध रोक कर) तो वृषल! इस कोरी बकवाद से क्या लाभ है? जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे। (शस्त्र फेंक कर और उठ कर) (आप ही आप) ह ह ह! राक्षस! यही तुम ने चाणक्य को जीतने का उपाय किया।

तुम जानौ चाणक्य सों नृप चन्दहि लरवाय।
सहजहि लैहैं राज हम निज बल बुद्धि उपाय॥
सो हम तुमही कहं छलन कियो क्रोध परकास।
तुमरोई करिहै उलटि यह तुव भेद बिनास॥

(क्रोध प्रगट करता हुआ चला जाता है)

चन्द्रगुप्त।—आर्य्य वैहीनर! "चाणक्य का अनादर करके आज से हम सब काम काज आपही सम्हालेंगे," यह लोगों से कह दो।

कंचुकी।—(आप ही आप) अरे! आज महाराज ने चाणक्य के पहले आर्य्य शब्द नहीं कहा! क्यों? क्या सचमुच अधिकार छीन लिया? वा इस में महाराज का क्या दोष है?

सचिव दोष सों होत हैं, नृपहु बुरे ततकाल।
हाथीवान प्रमाद सों, गज कहवावत व्याल॥

चन्द्रगुप्त।—क्यों जी? क्या सोच रहे हो?

कंचुकी।—यही कि महाराज को महाराज शब्द अब यथार्थ शोभा देता है।

चन्द्रगुप्त।—(आप ही आप) इन्हीं लोगों के धोखा खाने से आर्य्य का काम होगा (प्रगट) शोणोत्तरे! इस सूखी कलह से हमारा सिर दुखने लगा इस से शयन-गृह का मार्ग दिखलाओ।

प्रतिहारी।—इधर आवें महाराज इधर आवें।

चन्द्रगुप्त।—(उठ कर चलता हुआ आप ही आप)

गुरु आयसु छल सों कलह, करिहू जीय डराय।
किमि नर गुरुजन सों लरहिं, यहै सोच जिय हाय॥

(सब जाते हैं—जवनिका गिरती है)

॥ तृतीय अङ्क समाप्त हुआ ॥

—————

चतुर्थ अङ्क ।

स्थान—मन्त्री राक्षस के घर के बाहर का प्रान्त ।

(करभक घबड़ाया हुआ आता है)

करभक ।—अहाहा हा ! अहाहा हा !

अतिशय दुरगम ठांम मैं, सत जोजन सों दूर ।
कौन जात है धाइ बिनु, प्रभु निदेस भरपूर ॥

अब राक्षस मन्त्री के घर चलूं (थका सा घूम कर) अरे कोई चौकीदार है ? स्वामी राक्षस मन्त्री से जाकर कहो कि "करभक काम पूरा करके पटने से दौड़ा आता है।"

(दौवारिक आता है)

दौवारिक ।—अजी ! चिल्लाओ मत, स्वामी राक्षस मन्त्री को राजकाज सोचते २ सिर में ऐसी बिथा हो गई है कि अब तक सोने के बिछौने से नहीं उठे, इस से एक घड़ी भर ठहरो, अवसर मिलता है तो मैं निवेदन किए देता हूं । (परदा उठता है और सोने के बिछौने पर चिन्ता में भरा राक्षस और शकटदास दिखाई पड़ते हैं)

राक्षस ।—(आप ही आप)—

कारज उलटो होत है, कुटिलनीति के जोर ।
का कीजे सोचत यही, जागि होय है भोर ॥

और भी ।

आरम्भ पहिले सोचि रचना बेश की करि लावहीं ।
इक बात मैं गर्भित बहुत फल गूढ़ भेद दिखावहीं ॥
कारन अकारन सोचि फैली क्रियन कों सकुचावहीं ।

जे करहिं नाटक बहुल दुख हम सरिस तेऊ पावहीं ॥

और भी वह दुष्ट ब्राह्मण चाणक्य—

दौवारिक।—जय जय।

राक्षस।—किसी भांति मिलाया या पकड़ा जा सकता है?

दौवारिक।—अमात्य—

राक्षस।—(बाएं नेत्र के फड़कने का अपशकुन देख कर आप ही आप) 'ब्राह्मण चाणक्य जय जय' और 'पकड़ा जा सकता है? अमात्य' यह उलटी बात हुई और उसी समय असगुन भी हुआ। तौ भी क्या हुआ, उद्यम नहीं छोड़ेंगे (प्रकाश) भद्र! क्या कहता है?

दौवारिक।—अमात्य! पटने से करभक आया है सो आप से मिला चाहता है।

राक्षस।—अभी लाओ।

दौवारिक।—जो आज्ञा (करभक के पास जाकर उस को संग ले आ कर) भद्र! मन्त्री जी वह बैठे हैं, उधर जाओ (जाता है)।

करभक।—(मन्त्री को देखकर) जय हो, जय हो।

राक्षस।—अजी करभक! आओ आओ, अच्छे हो?—बैठो।

करभक।—जो आज्ञा (पृथ्वी पर बैठ जाता है)।

राक्षस।—(आप ही आप) अरे! मैं ने इस को किस काम का भेद लेने को भेजा था यह भूला जाता है (चिन्ता करता है)।

(बेंत हाथ में लेकर एक पुरुष आता है)

पुरुष।—हटे रहना—बचे रहना—अजी दूर रहो—दूर रहो, क्या नहीं देखते?

नृप द्विजादि जिन नरन को, मंगल रूप प्रकास।

ते न नीच मुखहू लखहिं, कैसो पास निवास ॥ *

(आकाश की ओर देख कर) अजी क्या कहा, कि क्यों हटाते हो ? अमात्य राक्षस के सिर में पीड़ा सुन कर कुमार मलयकेतु उन को देखने को इधर ही आते हैं (जाता है)।

(भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु आता है)

मलयकेतु।–(लंबी सांस लेकर—आप ही आप) हा ! देखो पिता के मरे आज दस महीने हुए और व्यर्थ वीरता का अभिमान कर के अब तक हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया, वरन तर्पण करना भी छोड़ दिया। या क्या हुआ, मैं ने तो पहिले यही प्रतिज्ञा ही किया है।

कर वलय उर ताड़त गिरे, आंचरहु की सुधि नहीं परी।
मिलि करहिं आरतनाद हाहा, अलक खुलि रज सों भरी ॥
जो शोक सों भइ मात गन की दशा सो उलटाइ हैं।
करि रिपु जुवतिगन की सोई गति पितहि तृप्ति कराइ हैं ॥

और भी—

रन मरि पितु ढिग जात हम, बीरन की गति पाइ।
कै माता दृग जल धरत, रिपु जुवती मुख लाइ ॥

(प्रकाश) अजी जाजले ! सब राजा लोगों से कहो कि "मैं बिना कहे सुने राक्षस मन्त्री के पास अकेला जाकर उन को प्रसन्न करूंगा" इस से वे सब लोग उधर ही ठहरैं।

कंचुकी।–जो आज्ञा (घूमते २ नेपथ्य की ओर देख कर)। अजी राजा लोग सुनो—कुमार की आज्ञा है कि मेरे साथ कोई न चलै (देख कर आनन्द से) महाराज-

---

* प्राचीनकाल में आचार्य राजा आदि नीचों को नहीं देखते थे।

कुमार ! आप देखिये। आप की आज्ञा सुनते ही सब राजा रुक गए—

अति चपल जे रथ चलत ते, सुनि चित्र से तुरतहि भए।
जे खुरन खोदत नभ पथहि, ते बाजिगन झुकि रुकि गए॥
जे रहे धावत ठिठकि ते, गज मूक घण्टा सह सधे।
मरजाद तुव नहिं तजहिं नृपगन जलधि से मानहुँ बँधे॥

मलयकेतु।—अजी जाजले ! तुम भी सब लोगों को लेकर जाओ, एक केवल भागुरायण मेरे संग रहैं।

कंचुकी।—जो आज्ञा (सब को लेकर जाता है)।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण ! जब मैं यहां आता था तो भद्रभट प्रभृति लोगों ने मुझ से निवेदन किया कि "हम राक्षस मन्त्री के द्वारा कुमार के पास नहीं रहा चाहते, कुमार के सेनापति शिखरसेन के द्वारा रहैंगे। दुष्ट मन्त्री ही के डर से तो चन्द्रगुप्त को छोड़ कर यहां सब बात का सुबीता जान कर कुमार का आश्रय लिया है।" सो उन लोगों की बात का मैं ने आशय नहीं समझा।*

भागुरायण।—कुमार ! यह तो ठीक ही है, क्योंकि अपने कल्याण के हेतु सब लोग स्वामी का आश्रय हित और प्रिय के द्वारा करते हैं।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण ! तो फिर राक्षस मन्त्री तो हम लोगों का परमप्रिय और बड़ा हित है।

भागुरायण।—ठीक है, पर बात यह है कि अमात्य राक्षस का बैर चाणक्य से है, कुछ चन्द्रगुप्त से नहीं है, इस से जो चाणक्य की बातों से रूठ कर चन्द्रगुप्त इस से मन्त्री का काम ले ले और नन्दकुल की भक्ति से "यह नन्द

* चाणक्य के मन्त्र ही से लोगों ने मलयकेतु से ऐसा कहा था।

ही के वंश का है " यह सोच कर राक्षस चन्द्रगुप्त से मिल जाय और चन्द्रगुप्त भी अपने बड़े लोगों का पुराना मन्त्री समझ कर उस को मिला ले, तो ऐसा न हो कि कुमार हम लोगों पर भी विश्वास न करैं।

मलयकेतु।—ठीक है, मित्र भागुरायण! राक्षस मन्त्री का घर कहां है?

भागुरायण। इधर—कुमार इधर [दोनों घूमते हैं] कुमार! यही राक्षस मन्त्री का घर है—चलिए।

मलयकेतु।—चलें (दोनों राक्षस के निकट जाते हैं)।

राक्षस।—अहा स्मरण आया (प्रकाश) कहो जी! तुम ने कुसुमपुर में स्तनकलस बैतालिक को देखा था?

करभक।—क्यों नहीं?

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! जब तक कुसुमपुर की बातें हों तब तक हम लोग इधर ही ठहर कर सुनैं कि क्या बात होती है। क्योंकि—

भेद न कछु जामैं खुलै, याही भय सब ठौर।
नृप सों मन्त्री जन कहहिं, बात और की और॥

भागुरायण।—जो आज्ञा (दोनों ठहर जाते हैं)।

राक्षस।—क्यों जी! काम सिद्ध हुआ?

करभक।—अमात्य की कृपा से सब काम सिद्ध ही हैं।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! वह कौन सा काम है?

भागुरायण।—कुमार! मन्त्री के जी की बातें बड़ी गुप्त हैं। कौन जानै? इस से देखिये अभी सुन लेते हैं कि क्या कहते हैं।

राक्षस।—अजी भली भांति कहो।

करभक।—सुनिये—जिस समय आप ने आज्ञा दिया कि

करभक तुम जाकर बैतालिक स्तनकलस से कह दो कि जब २ चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा भङ्ग करै तब तब तुम ऐसे श्लोक पढ़ो जिस से उस का जी और भी फिर जाय।

राक्षस।—हां तब?

करभक।—तब मैं ने पटने में जाकर स्तनकलस से आप का सन्देसा कह दिया।

राक्षस।—तब?

करभक।—इस के पीछे नन्दकुल के विनाश से दुखी लोगों का जी बहलाने के हेतु चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में कौमुदी-महोत्सव होने की डौंड़ी पिटा दी और उस को बहुत दिन से बिछुड़े हुए मित्रों के मिलाप की भांति पुर के निवासियों ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्नेह से मान लिया।

राक्षस।—(आंसू भर कर) हा देव नन्द!

जदपि उदित कुमुदन सहित, पाइ चांदनी चन्द।
तदपि न तुम बिन लसत है, नृपससि! जगदानन्द॥

हां फिर क्या हुआ?

करभक।—तब चाणक्य दुष्ट ने सब लोगों के नेत्र के परमानन्ददायक उस उत्सव को रोक दिया और उसी समय स्तनकलस ने ऐसे ऐसे श्लोक पढ़े कि राजा का भी मन फिर जाय।

राक्षस।—वाह मित्र स्तनकलस, वाह क्यों न हो, अच्छे समय में भेदबीज बोया है, फल अवश्य होगा। क्योंकि—

नृप रूठे अचरज कहा, सकल लोग जा सङ्ग।
छोटे हू मानै बुरो, परे रङ्ग में भङ्ग॥

मलयकेतु।—ठीक है [नृप रूठे यह दोहा फिर पढ़ता है]

राक्षस।—हां फिर क्या हुआ?

करभक।—तब आज्ञा भङ्ग से रुष्ट हो कर चन्द्रगुप्त ने आप की बड़ी प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य से अधिकार ले लिया।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! देखो प्रशंसा कर के राक्षस में चन्द्रगुप्त ने अपनी भक्ति दिखाई।

भागुरायण।—गुण प्रशंसा से बढ़ कर चाणक्य का अधिकार लेने से।

राक्षस।—क्यों जी, एक कौमुदीमहोत्सव के निषेध ही से चाणक्य चन्द्रगुप्त में बिगाड़ हुआ कि कोई और कारण भी है?

मलयकेतु।—क्यों मित्र भागुरायण! अब और बैर में यह क्या फल निकालैंगे?

भागुरायण।—यह फल निकाला है कि चाणक्य बड़ा बुद्धिमान् है वह व्यर्थ चन्द्रगुप्त को क्रोधित न करावैगा और चन्द्रगुप्त भी उस की बातें जानता है, वह भी बिना बात चाणक्य का ऐसा अपमान न करैगा, इस से उन लोगों में बहुत झगड़े से जो बिगाड़ होगा तो पक्का होगा।

करभक।—आर्य्य! और भी कई कारण हैं।

राक्षस।—कौन?

करभक।—कि जब पहिले यहां से राक्षस और कुमार मलयकेतु भागे तब उस ने क्यों नहीं पकड़ा?

राक्षस।—(हर्ष से) मित्र शकटदास! अब तो चन्द्रगुप्त हाथ में आ जायगा।

शकटदास।—अब चन्दनदास छूटैगा, और आप कुटुम्ब से मिलैंगे, वैसेही जीवसिद्धि इत्यादि लोग क्लेश से छूटैंगे।

भागुरायण।—(आप ही आप) हां, अवश्य जीवसिद्धि का क्लेश छूटा।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! अब मेरे हाथ चन्द्रगुप्त आवैगा, इस में इन का क्या अभिप्राय है?

भागुरायण।—और क्या होगा? यही होगा कि यह चाणक्य से छूटे चन्द्रगुप्त के उद्धार का समय देखते हैं। *

राक्षस।—अजी, अब अधिकार छिन जाने पर वह ब्राह्मण कहां है?

करभक।—अभी तो पटने ही में है।

राक्षस।—(घबड़ा कर) हैं! अभी वहीं है? तपोवन नहीं चला गया? या फिर कोई प्रतिज्ञा नहीं की?

करभक।—अब तपोवन जायगा—ऐसा सुनते हैं।

राक्षस।—(घबड़ा कर) शकटदास यह बात तो काम की नहीं,

देव नन्द को नहिं सह्यौ, जिन भोजन अपमान।
सो निज कृत नृप चन्द्र की, बात न सहिहै जान॥

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! चाणक्य के तपोवन जाने वा फिर प्रतिज्ञा करने में कौन कार्य्यसिद्धि निकाली है।

भागुरायण।—कुमार! यह तो कोई कठिन बात नहीं है, इस का आशय तो स्पष्ट ही है कि चन्द्रगुप्त से जितनी दूर चाणक्य रहैगा उतनी ही कार्य्यसिद्धि होगी।

शकटदास।—अमात्य! आप व्यर्थ सोच न करैं, क्योंकि देखैं—

---

* राक्षस ने तो "चन्द्रगुप्त हाथ में आवैगा" इस आशय से कहा था कि चन्द्रगुप्त जीता जायगा पर भागुरायण ने भेद कराने को मलयकेतु को उस का उलटा अर्थ समझाया।

सबहि भाँति अधिकार लहि, अभिमानी नृप चन्द।
नहिं सहिहै अपमान अब, राजा होइ स्वछन्द॥
तिमि चाणक्यहु पाइ दुख, एक प्रतिज्ञा पूरि।
अब दूजो करिहैं न कछु, उद्यम निज मद चूरि॥

राक्षस।—ऐसाही होगा। मित्र शटकदास! जाकर करभक को डेरा इत्यादि दो।

शकटदास।—जो आज्ञा।

(करभक को लेकर जाता है)

राक्षस।—इस समय कुमार से मिलने की इच्छा है।

मलयकेतु।—(आगे बढ़ कर) मैं आप ही आप से मिलने को आया हूँ।

राक्षस।—(संभ्रम से उठ कर) अरे कुमार आप ही आ गए! आइए, इस आसन पर बैठिए।

मलयकेतु।—मैं बैठता हूँ, आप विराजिए।

(दोनों बैठते हैं)

मलयकेतु।—इस समय सिर की पीड़ा कैसी है?

राक्षस।—जब तक कुमार के बदले महाराज कह कर आप को नहीं पुकार सकते तब तक यह पीड़ा कैसे छूटेगी *।

मलयकेतु।—आप ने जो प्रतिज्ञा की है तो सब कुछ होइगा। परन्तु सब सैना सामन्त के होते भी अब आप किस बात का आसरा देखते हैं?

राक्षस।—किसी बात का नहीं, अब चढ़ाई कीजिए।

मलयकेतु।—अमात्य! क्या इस समय शत्रु किसी सङ्कट में है?

* अर्थात् चन्द्रगुप्त को जीत कर जब आप को महाराज बना लेंगे तब स्वस्थ होंगे।

राक्षस।—बड़े।

मलयकेतु।—किस सङ्कट में?

राक्षस।—मन्त्रीसङ्कट में।

मलयकेतु।—मन्त्रीसङ्कट तो कोई सङ्कट नहीं है।

राक्षस।—और किसी राजा को न हो तो न हो पर चन्द्रगुप्त को तो अवश्य है।

मलयकेतु।—आर्य्य! मेरी जान में चन्द्रगुप्त को और भी नहीं है।

राक्षस।—आप ने कैसे जाना कि चन्द्रगुप्त को मन्त्रीसङ्कट सङ्कट नहीं है?

मलयकेतु।—क्योंकि चन्द्रगुप्त के लोग तो चाणक्य के कारण उस से उदास रहते हैं, जब चाणक्य ही न रहेगा तो उस के सब कामों को लोग और भी सन्तोष से करैंगे।

राक्षस।—कुमार, ऐसा नहीं है, क्योंकि यहां दो प्रकार के लोग हैं, एक चन्द्रगुप्त के साथी दूसरे नन्दकुल के मित्र, उन में जो चन्द्रगुप्त के साथी हैं उन को चाणक्य ही से दुःख था कुछ नन्दकुल के मित्रों को नहीं, क्योंकि वह लोग तो यही सोचते हैं कि इसी कृतघ्न चन्द्रगुप्त ने राज के लोभ से अपना पितृकुलनाश किया है, पर क्या करैं उन का कोई आश्रय नहीं है इस से चन्द्रगुप्त के आसरे पड़े हैं, जिस दिन आप को शत्रु के नाश में और अपने पक्ष के उद्धार में समर्थ देखैंगे उसी दिन चन्द्रगुप्त को छोड़ कर आप से मिल जायंगे, इस के उदाहरण हमी लोग हैं।

मलयकेतु।—आर्य्य! चन्द्रगुप्त के हारने का एक यही कारण है कि कोई और भी है?

राक्षस।—और बहुत क्या होंगे एक यही बड़ा भारी है।

मलयकेतु।—क्यों आर्य्य! यही क्यों प्रधान है? क्या चन्द्रगुप्त और मन्त्रियों से या आप अपना काम करने में असमर्थ हैं?

राक्षस।—निरा असमर्थ है।

मलयकेतु।—क्यों?

राक्षस।—यों कि जो आप राज्य सम्भालते हैं या जिन का राज राजा और मन्त्री दोनों करते हैं वह राजा ऐसे हों तो हों; परन्तु चन्द्रगुप्त तो कदापि ऐसा नहीं है। चन्द्रगुप्त एक तो दुरात्मा है दूसरे वह तो सचिव ही के भरोसे सब काम करता है इस से वह कुछ व्यवहार जानता ही नहीं, तो फिर वह सब काम कैसे कर सकता है? क्योंकि—

लक्ष्मी करत निवास अति, प्रबल सचिव नृप पाय।
पै निज बाल सुभाव सों, इकहिं तजत अकुलाय॥

और भी—

जो नृप बालक सो रहत, सदा सचिव के गोद।
बिन कछु जग देखे सुने, सो नहिं पावत मोद॥

मलयकेतु।—(आप ही आप) तो हम अच्छे हैं, कि सचिव के अधिकार में नहीं (प्रकाश) अमात्य! यद्यपि यह ठीक है तथापि जहां शत्रु के अनेक छिद्र हैं तहां एक इसी सिद्धि से सब काम न निकलैगा।

राक्षस।—कुमार के सब काम इसी से सिद्ध होंगे। देखिए—

चाणक्य को अधिकार छूट्यो चन्द्र हैं राजा नए।
पुर नन्द में अनुरक्त तुम निज बल सहित चढ़ते भए॥
जब आप हम—(कह कर लज्जा से कुछ ठहर जाता है)

तुव बस सकल उद्यम सहित रन मति करी ।
वह कौन सी नृप ! बात जो नहिं सिद्धि है है ता घरी ॥

मलयकेतु ।—अमात्य ! जो अब आप ऐसा लड़ाई का समय देखते हैं तो देर कर के क्यों बैठे, हैं ? देखिए—

इन को ऊँचो सीस है, वाको उच्च करार ।
श्याम दोऊ वह जल श्रवत, ये गण्डन मधु धार ॥
उतै भँवर को शब्द इत, भँवर करत गुंजार ।
निज सम तेहि लखि नासि हैं, दन्तन तोरि कछार ॥
सीस सोन सिन्दूर सों, ते मतङ्ग बल दाप ।
सोन सहज ही सोखिहैं, निश्चय जानहु आप ॥*

और भी ।

गरजि गरजि गंभीर रव, बरसि बरसि मधुधार ।
शत्रु नगर गज घेरिहैं, घन जिमि विविध पहार ॥

(शस्त्र उठा कर भागुरायण के साथ जाता है)

राक्षस ।—कोई है ?

[प्रियम्बदक आता है]

प्रियम्बदक ।—आज्ञा ?

राक्षस ।—देख तो द्वार पर कौन भिक्षुक खड़ा है ?

प्रियम्बदक ।—जो आज्ञा [बाहर जा कर फिर आता है] अमात्य ! एक क्षपणक भिक्षुक ।

राक्षस ।—(असगुन जान कर आप ही आप) पहिले ही क्षपणक का दर्शन हुआ ।

प्रियम्बदक ।—जीवसिद्धि है ।

राक्षस ।—अच्छा, बोला कर ले आ ।

प्रियम्बदक ।—जो आज्ञा (जाता है) ।

---

* पटना घेरने मे सोन उतर कर जाना था ।

(क्षपणक आता है)

क्षपणक ।-पहिले कटु परिणाम मधु, औषध सम उपदेस।
मोह ब्याधि के बैद्य गुरु, तिन को सुनहु निदेस।
[पास जाकर], उपासक ! धर्म लाभ हो।

राक्षस ।-जोतिषी जी बताओ अब हम लोग प्रस्थान किस दिन करें ?

क्षपणक ।-(कुछ सोच कर) उपासक ! मुहूर्त्त तो देखा। आज भद्रा तो पहर पहिले ही छूट गई है और तिथि भी सम्पूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी है और आप लोगों को उत्तर से दक्षिण जाना है और नक्षत्र भी दक्षिण ही है।
अथये सूरहिं चन्द के, उदये गमन प्रशस्त। *

---

* भद्रा छूट गई अर्थात् कल्याण को तो आप ने जब चन्द्रगुप्त का पक्ष छोड़ा तभी छोड़ा और संपूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी है अर्थात् चन्द्रगुप्त का प्रताप पूर्ण व्याप्त है। उत्तर नाम, प्राचीन पक्ष छोड़ कर दक्षिण अर्थात् यम की दिशा को जाना है। नक्षत्र दक्षिण है अर्थात् आप का बाम (विरुद्ध पक्ष) नक्षत्र और आप का दक्षिण पक्ष [मलयकेतु] नक्षत्र [बिना क्षत्र के] है। अथए इत्यादि, तुम जो सूर हो उस की बुद्धि के अस्त के समय और चन्द्रगुप्त के उदय के समय जाना अच्छा है अर्थात् चाणक्य की ऐसे समय में जय होगी। लग्न अर्थात् कारण भाव में बुध चाणक्य पड़ा है इस से केतु अर्थात् मलयकेतु का उदय भी है तो भी अस्त ही होगा। अर्थात् इस युद्ध में चन्द्रगुप्त जीतैगा और मलयकेतु हारैगा। 'सूर अथए' इस पद से जीवसिद्धि ने अमङ्गल भी किया। आश्विन पूर्णिमा तिथि, भरणी नक्षत्र, गुरुवार, मेष के चन्द्रमा, मीन लग्न में उस ने यात्रा बतलाई। इस में भरणी नक्षत्र गुरुवार, पूर्णिमा तिथि यह सब दक्षिण की यात्रा में निषिद्ध हैं। फिर सूर्य्य मृत है चन्द्र जीवित है यह भी बुरा है। लग्न में मीन का बुध पड़ने से [illegible]न का होने से बुरा है। यात्रा में नक्षत्र दक्षिण होने ही से बुरा है।

पाइ लगन बुध केतु तौ, उदयौ हू भो अस्त ॥

राक्षस।—अजी पहिले तो तिथि ही नहीं शुद्ध है।

क्षपणक।—उपासक !

एक गुनी तिथि होत है, त्यौं चौगुन नक्षत्र।
लगन होत चौंतिस गुनो, यह भाखत सब पत्र॥
लगन होत है शुभ लगन, छोड़ि क्रूर ग्रह एक।
जाहु चन्द बल देखि कै, पावहु लाभ अनेक॥ †

राक्षस।—अजी तुम और जोतिषियों से जा कर झगड़ो।

क्षपणक।—आप ही झगड़िये, मैं जाता हूं।

राक्षस।—क्या आप रूस तो नहीं गए ?

क्षपणक।—नहीं, तुम से ज्योतिषी नहीं रूसा है।

राक्षस।—तो कौन रूसा है ?

क्षपणक।—(आप ही आप) भगवान, कि तुम अपना पक्ष छोड़ कर शत्रु का पक्ष ले बैठे हो (जाता है)।

राक्षस।—प्रियम्बदक ! देख तो कौन समय है ?

प्रियम्बदक।—जो आज्ञा (बाहर से हो आता है) आर्य्य ! सूर्य्यास्त होता है।

राक्षस।—(आसन से उठ कर और देख कर) अहा ! भगवान सूर्य्य अस्ताचल को चले—

जब सूरज उदयो प्रबल, तेज धारि आकास।
तब उपबन तरुवर सबै, छायाजुत * भे पास॥

---

† अर्थात् मलयकेतु का साथ छोड़ दो तो तुम्हारा भला हो। वास्तव में चाणक्य के मित्र होने से जीवसिद्धि ने साइत भी उलटी दी। ज्योतिष के अनुसार अत्यन्त क्रूर बेला क्रूर ग्रह बेध में युद्ध आरंभ होना चाहिये उस के विरुद्ध सौम्य समय में युद्धयात्रा कही, जिस का फल पराजय है।

* छाया के साथ।

दूर परे ते तरु सबै, अस्त भये रवि ताप ।
जिमि धन बिन स्वामिहि तजै, भृत्य स्वारथी आप ॥

(दोनों जाते हैं)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

पंचमो अङ्कः ।

(हाथ में मोहर, गहिने की पेटी और पत्र ले कर सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक ।—अहाहा !

देशकाल के कलश से, सिंची बुद्धि जल जौन ।
लता नीति चाणक्य की, बहु फल दैहै तौन ॥

अमात्य राक्षस के मोहर का, आर्य्य चाणक्य का लिखा हुआ यह लेख और मोहर तथा यह आभूषण की पेटिका लेकर मैं पटने जाता हूं (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे ! यह क्या क्षपणक आता है ? हायहाय ! यह तो बुरा असगुन हुआ । तो मैं सूरज को देख कर इस का दोष छुड़ा लूँ ।

(क्षपणक आता है)

क्षपणक ।—नमो नमो अर्हन्त को, जो निज बुद्धि प्रताप ।
लोकोत्तर की सिद्धि सब, करत हस्तगत आप ॥

सिद्धार्थक । भदन्त ! प्रणाम ।

क्षपणक ।—उपासक ! धर्म्म लाभ हो (भली भांति देख कर) आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग कर रक्खा है ।

सिद्धार्थक ।—भदन्त ! तुम ने कैसे जाना ?

क्षपणक ।—इस में छिपी कौन बात है ? जैसे समुद्र में नाव पर सब के आगे मार्ग दिखानेवाला मांझी रहता है, वैसे ही तेरे हाथ में यह लखौटा है ।

सिद्धार्थक।—अजी भदन्त! भला यह तुमने ठीक जाना कि मैं परदेश जाता हूं, पर यह कहो कि आज दिन कैसा है?

क्षपणक।—(हंस कर) वाह श्रावक वाह! तुम मूँड़ मुड़ा कर भी नक्षत्र पूछते हो?

सिद्धार्थक।—भला अब क्या बिगड़ा है? कहते क्यों नहीं? दिन अच्छा होगा जायंगे, न अच्छा होगा फिर आवेंगे।

क्षपणक।—चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो, मलयकेतु के कटक से बिना मोहर भए कोई जाने नहीं पाता।

सिद्धार्थक।—यह नियम कब से हुआ?

क्षपणक।—सुनो, पहिले तो कुछ भी रोक टोक नहीं थी, पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाय न आवे। इस से जो तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो, क्योंकि पीछे से तुम्हें हाथ पैर न बंधवाना पड़े।

सिद्धार्थक।—क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के अन्तरङ्ग खेलाड़ी मित्र हैं? हमैं कौन रोक सकता है?

क्षपणक।—चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओगे।

सिद्धार्थक।—भदन्त! क्रोध मत करो, कहो कि काम सिद्ध हो।

क्षपणक।—जाओ काम सिद्ध होगा, हम भी पटने जाने के हेतु मलयकेतु से मोहर लेने जाते हैं।

(दोनों जाते हैं)

॥ इति प्रवेशक ॥

(भागुरायण और सेवक आते हैं)

गुरायण।—(आप ही आप) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है।

कहूँ बिरल कहुँ सघन कहुँ, बिफल कहूँ फलवान।
कहुँ कृस, कहुँ अति थूल कछु, भेद परंत नहिं जान॥
कहूँ गुप्त अति ही रहत, कबहूँ प्रगट लखात।
कठिन नीति चानक्य की, भेद न जान्यो जात॥

(प्रगट) भासुरक! मलयकेतु से मुझे क्षण भर भी दूर रहने में दुख होता है इस से यहीं बिछौनाँ बिछा तो बैठें।

वक।—जो आज्ञा, बिछौना बिछा है, विराजिए।

गुरायण।—(आसन पर बैठ कर) भासुरक! बाहर कोई मुझ से मिलने आवे तो आने देना।

वक।—जो आज्ञा, (जाता है)।

गुरायण।—(आप ही आप करुणा से) राम राम! मलयकेतु तो मुझ से इतना प्रेम करता है मैं उस का बिगाड़ किस तरह करूंगा? अथवा—

जस कुल तजि अपमान सहि, धन हित परवस होय।
जिन बेच्यो निज प्रान तन, सबै सकत करि सोय॥

(आगे आगे मलयकेतु और पीछे प्रतिहारी आते हैं)

लयकेतु।—(आप ही आप) क्या करें राक्षस का चित्त मेरी ओर से कैसा है यह सोचते हैं तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते हैं कुछ निर्णय नहीं होता।

नन्दवंश को जानि के, ताहि चन्द्र की चाह।
कै अपनायो जानि निज, मेरो करत निबाह॥
को हित अनहित तासु को, यह नहिं जान्यो जात॥
या सों जिय सन्देह अति, भेद न कछू लखात॥

[प्रगट] बिजये ! भागुरायण कहां हैं देख तो !

प्रतिहारी।—महाराज भागुरायण वह बैठे हुए आप की सेना के जाने वाले लोगों को राहखर्च और परवाना बांट रहे हैं।

मलयकेतु।—बिजये ! तुम दबे पांव से उधर से आओ, मैं पीछे से जाकर मित्र भागुरायण की आंखें बन्द करता हूं।

प्रतिहारी।—जो आज्ञा।

[दोनों दबे पांव से चलते हैं और भासुरक आता है]

भासुरक।—[भागुरायण से] बाहर क्षपणक आया है उस को परवाना चाहिए।

भागुरायण।—अच्छा, यहां भेज दो।

भासुरक।—जो आज्ञा [जाता है]।

[क्षपणक आता है]

क्षपणक।—श्रावक को धर्म लाभ हो।

भागुरायण।—[छल से उस की ओर देख कर] यह तो राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है [प्रगट] भदन्त ! तुम नगर में राक्षस के किसी काम से जाते होगे।

क्षपणक।—[कान पर हाथ रख कर] छी छी ! हम से राक्षस वा पिशाच से क्या काम ?

भागुरायण।—आज तुम से और मित्र से कुछ प्रेम कलह हुआ है, पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है ?

क्षपणक।—राक्षस ने कुछ अपराध नहीं किया है, अपराधी तो हम हैं।

भागुरायण।—ह ह ह ह। भदन्त ! तुम्हारे इस कहने से तो मुझ को सुनने की और भी उत्कण्ठा होती है।

मलयकेतु ।—(आप ही आप) मुझ को भी ।

भागुरायण ।—तो भदन्त कहते क्यों नहीं ?

क्षपणक ।—तुम सुन के क्या करोगे ?

भागुरायण ।—तो जाने दो, हमैं कुछ आग्रह नहीं है, गुप्त होय तो मत कहो ।

क्षपणक ।—नहीं उपासक ! गुप्त ऐसा नहीं है, पर वह बहुत बुरी बात है ।

भागुरायण ।—तो जाओ, हम तुम को परवाना न देंगे ।

क्षपणक ।—[आप ही आप की भांति] जो यह इतना आग्रह करता है तो कह दें (प्रत्यक्ष) श्रावक ! निरुपाय हो कर कहना पड़ा । सुनो—मैं पहिले कुसुमपुर में रहता था, तब संयोग से मुझ से राक्षस से मित्रता हो गई, फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग करा के बिचारे पर्व्वतेश्वर को मार डाला ।

मलयकेतु ।—(आंखों में पानी भर के) हाय हाय ! राक्षस ने हमारे पिता को मारा, चाणक्य ने नहीं मारा । हा !

भागुरायण ।—हां, तो फिर क्या हुआ ?

क्षपणक ।—फिर मुझे राक्षस का मित्र जान कर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझ को नगर से निकाल दिया तब मैं राक्षस के यहां आया, पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझ को ऐसा काम करने कहता है जिस से मेरा प्राण जाय ।

भागुरायण ।—भदन्त ! हम तो यह समझते हैं कि पहिले जो आधा राज देने कहा था, वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म्म किया, राक्षस ने नहीं किया ।

क्षपणक।—(कान पर हाथ रख कर) कभी नहीं, चाणक्य तो विषकन्या का नाम भी नहीं जानता यह घोर कर्म्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है।

भागुरायण।—हाय हाय! बड़े कष्ट की बात है। लो मुहर तो तुम को देते हैं पर कुमार को भी यह बात सुना दो।

मलयकेतु।—(आगे बढ़ कर)

सुन्यौ मित्र! श्रुति भेद कर, शत्रु कियो जो हाल।
पिता मरन को मोहि दुख, दुगुन भयो यहि काल॥

क्षपणक।—(आप ही आप) मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन लिया तो मेरा काम हो गया (जाता है)।

मलयकेतु।—[दांत पीस कर ऊपर देख कर] अरे राक्षस!

जिन तोपै विश्वास करि, सौंप्यौ सब धन धाम।
ताहि मारि दुख दै सबन, सांचो किय निज नाम॥

भागुरायण।—[आप ही आप] आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि "अमात्य राक्षस के प्राण की सर्वथा रक्षा करना" इस से अब बात फेरैं। (प्रकाश) कुमार! इतना आवेग मत कीजिए। आप आसन पर बैठिए तो मैं कुछ निवेदन करूं।

मलयकेतु।—मित्र क्या कहते हो कहो [बैठजाता है]।

भागुरायण।—कुमार! बात यह है कि अर्थशास्त्रवालों की मित्रता और शत्रुता अर्थ ही के अनुसार होती है, साधारण लोगों की भांति इच्छानुसार नहीं होती। उस समय सर्वार्थसिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था तब देव पर्व्वतेश्वर ही इस कार्य में कंटक थे तो उस कार्य्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं। आप देखिए—

मित्र शत्रु ह्वै जात हैं, शत्रु करहिं अति नेह।
अर्थ नीति बस लोग सब, बदलहिं मानहुं देह॥

इस से राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिये। और जब तक नन्दराज्य न मिल तब तक उस पर प्रकट स्नेह ही रखना नीतिसिद्ध है। राज्य मिलने पर कुमार जो चाहैंगे करैंगे।

मलयकेतु।—मित्र ऐसा ही होगा। तुम ने बहुत ठीक सोचा है। इस समय इस के बध करने से प्रजागण उदास हो जायंगे और ऐसा होने से जय में भी सन्देह होगा।

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य।—कुमार की जय हो। कुमार के कटकद्वार के रक्षाधिकारी दीर्घचक्षु ने निवेदन किया है कि "मुद्रा लिये बिना एक पुरुष कुछ पत्र सहित पकड़ा गया है सो उस को एक बेर आप देख लें।"

भागुरायण।—अच्छा, उस को ले आओ।

पुरुष।—जो आज्ञा।

(जाता है और हाथ बंधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धार्थक।—(आप ही आप)।

गुन पै रिझवत दोस सों, दूर बचावत जौन।
स्वामि भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन।

पुरुष।—(हाथ जोड़ कर) कुमार! यही मनुष्य है।

भागुरायण।—(अच्छी तरह देख कर) यह क्या बाहर का मनुष्य है या यहीं किसी का नौकर है?

सिद्धार्थक।—मैं अमात्य राक्षस का पासवर्ती सेवक हूं।

भागुरायण ।—तो तुम क्यों मुद्रा लिये बिना कटक के बाहर जाते थे ?

सिद्धार्थक ।—आर्य्य ! काम की जल्दी से ।

भागुरायण ।—ऐसा कौन काम है जिस के आगे राजाज्ञा को भी कुछ मोल नहीं गिना ?

सिद्धार्थक ।—(भागुरायिण के हाथ में लेख देता है) ।

भागुरायण ।—(लेख लेकर देख कर) कुमार ! इस लेख पर अमात्य राक्षस की मुहर है ।

मलयकेतु । - ऐसी तरह से खोल कर दो कि मुहर न टूटे ।

भागुरायण ।—(पत्र खोल कर मलयकेतु को देता है) ।

मलयकेतु ।—(पढ़ता है) स्वस्ति । यथा स्थान में कहीं से कोई किसी पुरुष विशेष को कहता है । हमारे विपक्ष को निराकरण करके सच्चे मनुष्य ने सचाई दिखलाई । अब हमारे पाहिले के रक्खे हुए हमारे हितकारी चरों को भी जो जो देने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना । यह लोग प्रसन्न होंगे तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भांति अपने उपकारी की सेवा करैंगे । सच्चे लोग कहीं नहीं भूलते तो भी हम स्मरण कराते हैं । इन में से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते हैं और कोई राज चाहते हैं । हम को सत्यवादी ने जो तीन अलङ्कार भेजे सो मिले । हम ने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना । और जबानी हमारे अत्यन्त प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुन लेना * ।

---

* यह वही लेख है जिस को चाणक्य ने शकटदास से धोखा देकर लिखवाया था और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर कर के सिद्धार्थक को दिया था ।

मलयकेतु।—मित्र भागुरायण! इस लेख का आशय क्या है?

भागुरायण।—भद्र सिद्धार्थक! यह लेख किस का है?

सिद्धार्थक।—आर्य्य! मैं नहीं जानता।

भागुरायण।—धूर्त! लेख लेकर जाता, है और यह नहीं जानता कि किस ने लिखा है। और संदेसा किस से कहैगा।

सिद्धार्थक।—(डरते हुए की भांति) आप से।

भागुरायण।—क्यों रे! हम से?

सिद्धार्थक।—आप ने पकड़ लिया। हम कुछ नहीं जानते कि क्या बात है।

भागुरायण।—(क्रोध से) अब जानैगा। भद्र भासुरक! इस को बाहर लेजाकर जब तक यह सब कुछ न बतलावै तब तक खूब मारो।

पुरुष।—जो आज्ञा। (सिद्धार्थक को बाहर ले कर जाता है और हाथ में एक पेटी लिए फिर आता है) आर्य्य! उस को मारने के समय उस के बगल में से यह मुहर की हुई पेटी गिर पड़ी।

भागुरायण।—(देख कर) कुमार! इस पर भी राक्षस की मुहर है।

मलयकेतु।—यही लेख अशून्य करने को होगी। इस की भी मुहर बचा कर हम को दिखलाओ।

भागुरायण।—(यही खोल कर दिखलाता है)।

मलयकेतु।—अरे यह तो वही सब आभरण हैं जो हम ने राक्षस को भेजे थे *। निश्चय यह चन्द्रगुप्त को लिखा है।

---

* दूसरा अङ्क पढ़ने से यहां की सब कथा खुल जायेगी। चाणक्य ने

भागुरायण ।–कुमार ! अभी सब संशय मिट जाता है। भासुरक उस को और मारो।

पुरुष ।–जो आज्ञा (बाहर जा कर फिर आता है *) आर्य्य ! हम ने उस को बहुत मारा है अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे।

मलयकेतु ।—अच्छा, ले आओ।

पुरुष ।—जो कुमार की आज्ञा (बाहर जा कर सिद्धार्थक को ले कर आता है)।

सिद्धार्थक ।—(मलयकेतु के पैरों पर गिर कर) कुमार ! हम को अभय दान दीजिए।

मलयकेतु ।—भद्र ! उठो। शरणागत जन यहां सदा अभय हैं। तुम इस का वृत्तान्त कहो।

सिद्धार्थक ।—(उठ कर) सुनिए। मुझ को अमात्य राक्षस ने यह पत्र दे कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा था।

चालाकी कर के चन्द्रगुप्त से पर्व्वतेश्वर के आभरण का दान कराया था और अपने ही ब्राह्मणों को दिलवाया था। उन्हीं लोगों ने राक्षस के हाथ वह आभरण बेचे जिस के विषय मे कि इस पत्र में लिखा है " हम को सत्यवादी ने तीन अलकार भेजे सो मिले। " जिस में मलयकेतु को विश्वास हो कि पर्व्वतेश्वर के आभरण राक्षस ने मोल नहीं लिए किन्तु चन्द्रगुप्त ने उस को भेजे और मलयकेतु ने कंचुकी के द्वारा जो आभरण राक्षस को भेजे थे वही इस पेटी मे बन्द थे। जिस में मलयकेतु को यह सन्देह हो कि राक्षस इन आभरणों को चन्द्रगुप्त को भेजता है।

* ऐसे अवसर पर नाटक खेलनेवालों को उचित है कि बाहर जा कर बहुत जल्द न चले आवैं। और वह जिस कार्य्य के हेतु गए है नेपथ्य में उस का अनुकरण करैं। जैसा भासुरक को सिद्धार्थक मारने के हेतु भेजा गया है तो उस को नेपथ्य मे मारने का सा कुछ शब्द कर के तब फिर आना चाहिए।

मलयकेतु।- ज़बानी क्या कहने कहा था वह कहो।

सिद्धार्थक।—कुमार! मुझ को अमात्य राक्षस ने यह कहने कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्म्मा, मलयाधिपति सिंहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष, * सिन्धु

* कश्मीर के राजा के विषय में मुद्राराक्षस के कवि को भ्रम हुआ है यह सम्भव होता है। राजतरंगिणी में कोई राजा पुष्कराक्ष नाम का नहीं है। जिस समय मे पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त राज्य करता था उस समय कश्मीर में विजय जयेन्द्र सन्धिमान मेघवाहन और प्रवरसेन इन्हीं राजों के होने का सम्भव है। कनिङ्गहम, लैसन, विलसन इत्यादि विद्वानों के मत मे सौ बरस के लगभग का अन्तर है, इसी से मै ने यहां कई राजों का सम्भव होना लिखा। इन राजाओं के जीवनइतिहास मे पटने तक किसी का आना नहीं लिखा है और न चन्द्रगुप्त के काल की किसी घटना से उन से सम्बन्ध है। मेघाक्ष मेघवाहन को लिखा हो यह सम्भव हो सकता है। क्योंकि मेघवाहन पहले गान्धार देश का राजा था फिर कश्मीर का राजा हुआ। भ्रम से उस को पारसीकराज लिख दिया हो। या सिल्यूकस का शैलाक्ष अनुवाद न कर के मेघाक्ष किया हो। सन्धिमान और प्रवरसेन से सिन्धुसेन निकाला हो। भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमा पर उस समय सिकन्दर के मरने से बड़ा ही गड़बड़ था इस से कुछ शुद्ध वृत्तान्त नहीं मिलता। सम्भव है कि कवि ने जो कुछ उस समय सुना लिख दिया। वा यह भी सम्भव है कि यह सब देश और नाम केवल काव्यकल्पना हो। इतिहासों से यह भी विदित होता है कि मेगास्थनिस (Megasthenes) नामक एक राजदूत सिल्यूकस का चन्द्रगुप्त की सभा में आया था। सम्भव है कि इसी का नाम मेघाक्ष लिखा हो। यदि शुद्ध राजतरंगिणी का हिसाब लीजिए तो एक दूसरी ही लड़ मिलती है। इस के मत से ६५३ बरस कलियुग बीते महाभारत का युद्ध हुआ। फिर २०१ बरस में तीन गोनर्द हुए, अब ७५४ ग० क० सम्वत् हुआ। इस के पीछे १२६६ बरस के राजाओं का वृत्त नहीं मालूम। (२०२० ग० क०) इस समय के ८६७ वर्ष पीछे उत्पलाक्ष हिरण्याक्ष और हिरण्यकुल इस ना

महाराज सिन्धुसेन और पारसीक पालक मेघाक्ष इन पांच राजाओं से आप से पूर्व्व में सन्धि हो चुकी है। इस में पहिले तीन तो मलयकेतु का राज चाहते हैं और बाकी दो खज़ाना और हाथी चाहते हैं। जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़ कर मुझ को प्रसन्न किया उसी तरह इन लोगों को भी प्रसन्न करना चाहिए। यही राजसन्देश है।

मलयकेतु।—(आप ही आप) क्या चित्रवर्म्मादिक भी हमारे

के राजा हुए। २७६० ग० क० के पास इन का राज आरम्भ हुआ और २८८७ ग० क० तक रहा। इस वर्ष गत कलि ४६८२ इस से चन्द्रगुप्त का समय २८०० ग० क० हुआ तो उत्पलाक्ष हिरण्य वा हिरण्याक्ष राजा राजतरंगिणी के मत से चन्द्रगुप्त के समय में थे। (राजतरंगिणी प्र० त० २८७ श्लोक से)।

" उत्पलाक्ष इति ख्याति पेशलात्तया गतः।
तत्सूनुस्त्रिंशतं सार्द्धां वर्षाणामवशान्महीम् ॥
तस्यसूनुर्हिरण्याक्षः स्वनामाङ्कपुरं व्यधात्।
क्ष्मां सप्तत्रिंशतंवर्षान् सप्तमासांश्च भुक्तवान् ॥
हिरण्यकुलइत्यस्य हिरण्याक्षस्य चात्मजः।
षष्टि षष्टिंच मुकुलस्तत्सूनुरभवत् समाः ॥
अथम्लेच्छगणाकीर्णे मंडले चंडचेष्टितः।" इत्यादि।

यह सम्बन्ध दो तीन बातों से पुष्ट होता है। एक तो यह स्पष्ट सम्भव है कि उत्पलाक्ष का पुष्कराक्ष हो गया हो। दूसरे उन्हीं लोगों के समय उस प्रान्त में म्लेच्छों का आना लिखा है। तीसरे इसी समय से गान्धार बर्बर आदि देशों के लोगों का व्यवहार यहां प्रचलित हुआ। इन बातों से निश्चित होता है कि यही उत्पलाक्ष वा हिरण्याक्ष पुष्कराक्ष नाम से लिखा है, विरोध केवल इतना ही है कि राजतरंगिणी में चन्द्रगुप्त का वृत्तान्त नहीं है।

द्रोही हैं ? तभी राक्षस में उन लोगों की ऐसी प्रीति है। (प्रकाश) विजये ! हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते हैं।

प्रतिहारी।—जो आज्ञा (जाता है)।

(एक परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ चिन्ता की मुद्रा में एक पुरुष के साथ दिखलाई पड़ता है *)

राक्षस।—(आप ही आप) चन्द्रगुप्त की ओर के बहुत लोग हमारी सेना में भरती हो रहे हैं इस से हमारा मन शुद्ध नहीं है। क्योंकि—

रहत साध्य तें अन्वित अरु बिलसत निज पच्छहिं।
सोई साधन साधक जो नहिं छुअत बिपच्छहिं॥
जो पुनि आपु असिद्ध सपच्छ विपच्छहु में सम।
कछु कहु नहिं निज पच्छ माँहिं जाको है संगम॥
नरपति ऐसे साधनन कों अनुचित अंगीकार करि।
सब भांति पराजित होत हैं बादी लौं बहुबिधि बिगरि †॥

---

* इस पांचवें अङ्क में चार बेर दृश्य बदला है। पहिले प्रवेशक, फिर भागुरायण का प्रवेश और तीसरा यह राक्षस का प्रवेश, चौथा राक्षस का फिर मलयकेतु के पास जाना। नए नाटकों के अनुसार चार दृश्यों वा गर्भाङ्कों में इस को बांट सकते हैं; यथा पहिला दृश्य राजमार्ग, दूसरा युद्ध के डेरों के बीच में मार्ग, और तीसरा राक्षस का डेरा, चौथा मलयकेतु का डेरा।

† न्यायशास्त्र में अनुमान के प्रकरण में किसी पदार्थ को दूसरे पदार्थ के साथ बराबर रहते देख कर व्याप्तिज्ञान होता है कि जहां पहला पदार्थ रहता है वहां दूसरा अवश्य रहता होगा। जैसा रसोई के घर में अग्नि के साथ धूंए को बराबर देख कर व्याप्तिज्ञान होता है कि जहां धुआं होगा वहां अग्नि अवश्य होगी। इसी भांति और कहीं भी यदि दूसरे पदार्थ को देखो तो

वा जो लोग चन्द्रगुप्त से उदास हो गए हैं वही लोग इधर मिले हैं, मैं व्यर्थ सोच करता हूं। (प्रगट) प्रियम्बदक! कुमार के अनुयायी राजा लोगों से हमारी ओर से कह दो कि अब कुसुमपुर दिन दिन पास आता जाता है, इस से सब लोग अपनी सेना अलग अलग कर के जो जहां नियुक्त हों वहां सावधानी से रहैं।

आगे खस अरु मगध चलैं जय ध्वजहि उड़ाए।
यवन और गंधार रहैं मधि सैन जमाए॥
चेदि हून सक राज लोग पीछे सों धावहिं।

पदार्थ का ज्ञान होता है कि वहां भी अग्नि अवश्य होगी। इसी को अनुमिति कहते हैं। जिस की बाद में सिद्धि करनी हो उस को साध्य कहते हैं, जैसे अग्नि। जिस के द्वारा सिद्ध हो उसे हेतु और साधन कहते हैं, जैसे धूम। जहां साध्य का रहना निश्चित हो वह सपक्ष कहलाता है, जैसे पाकशाला। जिस में अनुमिति से साध्य की सिद्धि करनी हो वह पक्ष कहलाता है, जैसे पर्वत। जहां साध्य का निश्चय अभाव हो वह विपक्ष कहलाता है, जैसा जलाशय। यहां पर कवि ने अपनी न्यायशास्त्र की जानकारी का परिचय देने को यह छन्द बनाया है। जैसे न्यायशास्त्र में बाद करनेवाला पूर्वोक्त साधनादिकों को न जान कर स्वपक्ष स्थापन में असमर्थ हो कर हार जाता है, वैसे ही जो राजा (साधक) सैना आदि साधन से अन्वित है और अपने पक्ष को जानता है विपक्ष से बचता है वह जय पाता है। जो आप साध्यों [सेना नीति आदिकों] से हीन (असिद्ध) है और जिस को शत्रु मित्र का ज्ञान नहीं है और जो अपने पक्ष को नहीं समझता और अनुचित साधनों का [अर्थात् शत्रु से मिले हुए लोगों का] अंगीकार करता है, वह हारता है। यह राक्षस ने इसी बिचार पर कहा कि चन्द्रगुप्त के लोग इधर बहुत मिले हैं इस से हारने का सन्देह है। [दर्शनों का थोड़ा सा वर्णन पाठकगण की जानकारी के हेतु पीछे किया जायगा]।

कौलूतादिक नृपति कुमारहि घेरे आवहिं * ॥

* खस हिमालय के उत्तर की एक जाति । कोई विद्वान् तिब्बत कोई लद्दाख को खस देश मानते हैं । यवन शब्द से मुख्य तात्पर्य यूनानप्रान्त के देशों से है (Bactria. Lovia. Greek) परन्तु पश्चिम की विदेशी और अन्यधर्मी जाति मात्र को मुहाविरे में यवन कहते हैं । गान्धार जिस का अपभ्रंश कन्दहार है । चेदि देश बुन्देलखण्ड । कोई कोई चंदेरी के छोटे शहर को चेदि देश की राजधानी कहते हैं । हून देश योरोप के तत्काल के किसी असभ्य देश का नाम (Huns. Hungary.) कोई विद्वान् मध्यएशिया में हून देश मानते हैं । शक को कोई विद्वान् तातार देश कहते हैं और कोई (Scythians) को शक कहते हैं । कोई बलूचिस्तान के पास के देशों को शक देश मानते हैं । कौलूत देश के राजा चित्रवर्मादिक राक्षस के बड़े विश्वस्त थे इसी से कुमार की अङ्गरक्षा इन को दी थी । इन को राजाओं के नाम और देश का कुछ और पता मिलने को हम सिकन्दर के विजय की बड़ी बड़ी पुस्तकों को देखैं । क्योंकि बहुत सी बातैं जिन का पता इस देश की पुस्तकों से नहीं लगता विदेशी पुस्तकैं उन को सहज में बतला देती हैं । इस हेतु यहां तीन अङ्गरेजी पुस्तकों से हम थोड़ा सा अनुवाद करते हैं—(1) Alexander the Great and his successors, (2) History of Greece, (3) Plutarch's lives of illustrious men. V. II. " सिकन्दर के सिपाही लोग केवल ऋतु और थकावट ही से नहीं डरे, किन्तु उन्हों ने यह भी सुना कि गंगा छ सौ फुट गहरी और चार मील चौड़ी है । Ganderites और Praisians के राजागण अस्सी हजार सवार, दो लाख सिपाही, छ हजार हाथी और आठ हजार रथ सजे हुए सिकन्दर से लड़ने को तयार हैं । इतनी सैना मगध देश में एकत्र होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि ऐन्द्राकुतस (चन्द्रगुप्त) ने सिल्यूकस को एक ही बेर पांच सौ हाथी दिए थे और एक बेर छ लाख सैना लेकर सारा हिन्दुस्तान जीता था ।" यह गान्दरिटस गान्धार और प्रेसिअन फारस प्रान्त के किसी देश का नाम होगा । हम को इन पांच राजाओं मे कुलूत और मलय इन

प्रियम्बदक ।— अमात्य की जो आज्ञा (जाता है) ।

(प्रतीहारी आता है)

प्रतीहारी ।—अमात्य की जय हो । कुमार अमात्य को देखना चाहते हैं ।

राक्षस ।—भद्र ! क्षण भर ठहरो । बाहर कौन है ?

(एक मनुष्य आता है) ।

मनुष्य ।—अमात्य ! क्या आज्ञा है ?

दो देशों की विशेष चिन्ता है, इस हेतु इन देशों का विशेष अन्वेषण कर के आगे लिखते हैं "एक बेर सिकन्दर [Malli] मालि वा मल्लि नामक भारत के विख्यात लड़नेवाली जाति से जब वह उन को जीतने को गया था मरते मरते बचा । जब सिकन्दर ने उन लोगों का दुर्ग घेर लिया और दीवार पर के लोगों को अपने शस्त्र से मार डाला तो साहस कर के अकेला दीवार पर चढ कर भीतर कूद पड़ा और वहां शत्रुओं से ऐसा घिर गया कि यदि उस के सिपाही साथ ही न पहुचते तो वह टुकड़े २ हो जाता ।" यह मल्ली देश ही मुद्राराक्षस का मलय देश है यह संभव होता है । यद्यपि अगरेजी वाले यह देश कहां था इस का कुछ वर्णन नही करते, किन्तु हिन्दुस्तान से लौटते समय यह देश उस को मिला था, इस से अनुमान होता है कि कहीं बलूचिस्तान के पास होगा । आगे चल कर फिर लिखते हैं "नदियों के मुहाने पर पहुंचने के पीछे उस को एक टापू मिला, जिस को उस ने शिलोसतिस Scillonstis लिखा है पर आरियन [आर्य] लोग उस टापू को किलूता Cillutta कहते हैं ।" क्या आश्चर्य है कि यही कुलूत हो । वह लोग यह भी लिखते है कि चन्द्रगुप्त ने छोटेपन में सिकन्दर को देखा था और उस के विषय में उस ने यह अनुमति दी थी कि सिकन्दर यदि स्वभाव अपने वश में रखता तो सारी पृथ्वी जीतता । अब इन पुस्तकों से राजाओं के नाम भी कुछ मिलाइए । पर्व्वतेश्वर और बर्ब्बर यह दोनो शब्द Barbarian बर्बरियन के कैसे पास है । कश्मीरादि देश का राजा जिस के पंजाब अति निकट है पुष्कराक्ष ग्रीक लोगों के पोरस शब्द के पास है । पुष्कराक्ष को

राक्षस ।—भद्र ! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हम को आभरण पहराया है तब से उन के सामने नंगे अंग जाना हम को उचित नहीं है। इस से जो तीन आभरण मोल लिए हैं उन में से एक भेज दें।

मनुष्य ।—जो अमात्य की आज्ञा। (बाहर जाता है आभरण लेकर आता है।) अमात्य ! अलंकार लीजिए।

राक्षस ।—(अलंकार धारण कर के) भद्र ! राजकुल में जाने का मार्ग बतलाओ।

प्रतिहारी ।—इधर से आइए।

राक्षस ।—अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है।

पुसकरस और उस से पोरस हुआ हो तो क्या आश्चर्य है। प्यूकेसतस वा पूसेतस (जो सिकन्दर के पीछे पारस का गवर्नर हुआ था) भी पुष्कराक्ष के पास है किन्तु यहां पारस का राजा मेघाक्ष लिखा है। इन राजाओं का ठीक ठीक ग्रीक नाम या जो देश उन का बिशाखदत्त ने लिखा उस को यूनान-वाले उस समय क्या कहते थे यह निर्णय करना बहुत कठिन है। संस्कृत के शब्द भी यूनानी में इतने बदल जाते हैं जिस का कुछ हिसाब नहीं। चन्द्रगुप्त का ऐन्द्राकोत्तस वा सैन्ड्राकोटस पाटलीपुत्र का पालीबोत्रा वा पालीभौत्तरा। तक्षक का तैक्षसाइलस। यही बात यदि हम यूनानी शब्दों को संस्कृत के सादृश्या-नुसार अनुवाद करें तो उपस्थित होगी। अलेकजैन्डर एलेकजेन्दर इत्यादि का फारसी सिकन्दर हुआ। हम यदि इन शब्दों को संस्कृत Sanskritised करें तो अलक्षेन्द्र वा लक्षेन्द्र वा श्रीकेन्द्र वा श्रीकन्दर वा शिक्षेन्द्र इत्यादि शब्द होंगे। अब कहिए, कहां के शब्द कहां जा पड़े। इसी से ठीक ठीक नामग्राम का निर्णय होना बहुत कठिन है। केवल शब्द विद्या के पण्डितों के कुतूहल के हेतु इतना भी लिखा गया।

सेवक प्रभु सों डरत सदाहीं। पराधीन सपने सुख नाहीं ॥
जे ऊंचे पद के अधिकारी। तिन को मनहीं मन भय भारी ॥
सबही द्वेष बड़न सो करहीं। अनुछिन कान स्वामि को भरहीं ॥

जिमि जे जनमे ते मरैं, मिले अवसि बिलगाहिं।
तिमि जे अति ऊंचे चढ़ैं, गिरि हैं संसय नाहिं ॥

प्रतिहारी।—(आगे बढ़ कर) अमात्य! कुमार यह बिराजते हैं, आप जाइये।

राक्षस।—अरे कुमार यह बैठे हैं।

लखत चरन की ओर हू, तऊ न देखत ताहि।
अचल दृष्टि इक ओर ही, रही बुद्धि अवगाहि ॥
कर पै धारि कपोल निज, लसत झुको अवनीस।
दुसह काज के भार सों, मनहुं नमित भो सीस ॥

(* आगे बढ़ कर) कुमार की जय हो।

मलयकेतु।—आर्य! प्रणाम करता हूं। आसन पर बिराजिए।

राक्षस।—(बैठता है।)

मलयकेतु।—आर्य! बहुत दिनों से हम लोगों ने आप को नहीं देखा।

राक्षस।—कुमार! सैना को आगे बढ़ाने के प्रबन्ध में फंसने के कारण हम को यह उपालम्भ सुनना पड़ा।

मलयकेतु।—अमात्य! सेना के प्रयाण का आप ने क्या प्रबन्ध किया है, मैं भी सुनना चाहता हूं।

राक्षस।—कुमार! आप के अनुयायी, राजा लोगों को यह आज्ञा दी है ('आगे खस अरु मगध' इत्यादि छन्द पढ़ता है)।

---

* यहीं पर चौथा दृश्य आरम्भ होता है।

मलयकेतु।—[आप ही आप] हां! जाना! जो हमारे नाश करने के हेतु चन्द्रगुप्त से मिले हैं वही हम को घेरे रहेंगे [प्रकाश] आर्य! अब कुसुमपुर से कोई आता है या वहां जाता है कि नहीं?

राक्षस।—अब यहां किसी के आने जाने से क्या प्रयोजन? पांच छ दिन में हम लोग ही वहां पहुंचेंगे।

मलयकेतु।—[आप ही आप] अभी सब खुल जाता है [प्रगट] जो यही बात है तो इस मनुष्य को चिट्ठी ले कर आप ने कुसुमपुर क्यों भेजा था?

राक्षस।—[देख कर] अरे सिद्धार्थक है? भद्र यह क्या?

सिद्धार्थक।—[भय और लज्जा नाट्य कर के] अमात्य हम को क्षमा कीजिए। अमात्य हमारा कुछ भी दोष नहीं है। मार खाते खाते हम आप का रहस्य छिपा न सके।

राक्षस।—भद्र! वह कौन सा रहस्य है यह हम को नहीं समझ पड़ता।

सिद्धार्थक।—निवेदन करते हैं। मार खाने से। [इतना ही कह लज्जा से नीचा मुंह कर लेता है]

मलयकेतु।—भागुरायण! स्वामी के सामने लज्जा और भय से यह कुछ न कह सकैगा इस से तुम सब बात आर्य से कहो।

भागुरायण।—कुमार की जो आज्ञा। अमात्य! यह कहता है कि, अमात्य राक्षस ने हम को चिट्ठी दे कर और संदेश कह कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस।—भद्र सिद्धार्थक! क्या यह सत्य है?

सिद्धार्थक।—[लज्जा नाट्य कर के] मार खाने के डर से मैं ने कह दिया।

राक्षस ।—कुमार ! मार की डर से लोग क्या नहीं कह देते?

मलयकेतु ।—भागुरायण ! चिट्ठी दिखला दो और संदेशा वह अपने मुंह से कहैगा ।

भागुरायण ।—[चिट्ठी खोल कर ' स्वस्ति कहीं से कोई किसी को' इत्यादि पढ़ता है] ।

राक्षस ।—कुमार ! कुमार ! यह सब शत्रु का प्रयोग है ।

मलयकेतु ।—लेख अशून्य करने को आर्य ने जो आभरण भेजे हैं वह शत्रु कैसे भेजेगा । [आभरण दिखलाता है] ।

राक्षस ।—कुमार ! यह मैं ने किसी को नहीं भेजा । कुमार ने यह मुझ को दिया और मैं ने प्रसन्न हो कर सिद्धार्थक को दिया ।

भागुरायण ।—अमात्य ! ऐसे उत्तम आभरणों का विशेष कर अपने अंग से उतार कर कुमार की दी हुई वस्तु का यह पात्र है ?

मलयकेतु ।—और संदेश भी बड़े प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुनना यह आर्य ने लिखा है ।

राक्षस ।—कैसा संदेश और कैसी चिट्ठी ? यह हमारा कुछ नहीं है ।

मलयकेतु ।—तो मुहर किस की है ?

राक्षस ।—धूर्त्त लोग कपटमुद्रा भी बना लेते हैं ।

भागुरायण ।—कुमार ! अमात्य सच्च कहते हैं । सिद्धार्थक ! यह चिट्ठी किस की लिखी है ?

सिद्धार्थक ।—(राक्षस का मुंह देख कर चुप रह जाता है ।)

भागुरायण ।—चुप मत रहो । जी कड़ा कर के कहो ।

सिद्धार्थक ।—आर्य ! शकटदास ने ।

राक्षस ।—शकटदास ने लिखा तो मानो मैं ने ही लिखा ।

मलयकेतु।—बिजये! शकटदास को हम देखा चाहते हैं।

भागुरायण।—(आप ही आप) आर्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नहीं करते। जो शकटदास आ कर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है यह सब वृत्तान्त कह देगा तो मलयकेतु फिर बहक जायगा। (प्रकाश) कुमार! शकटदास, अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करैंगे इस से उन का कोई और लेख मंगा कर अक्षर मिला लिए जायं।

मलयकेतु।—बिजये! ऐसा ही करो।

भागुरायण।—और मुहर भी आवै।

मलयकेतु।—हां, यह भी।

कंचुकी।—जो आज्ञा (बाहर जाता है और पत्र और मुहर लेकर आता है)। कुमार! यह शकटदास का लेख और मुहर है।

मलयकेतु। (देख कर और अक्षर और मुहर की मिलान कर के) आर्य! अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस।—(आप ही आप) अक्षर निस्सन्देह मिलते हैं, किन्तु शकटदास हमारा मित्र है इस हिसाब से नहीं मिलते, तो क्या शकटदास ही ने लिखा अथवा—

पुत्र दार की याद करि, स्वामि भक्ति तजि देत।
छोड़ि अचल जस को करत, चल धन सों जन हेत॥

या इस में सन्देह ही क्या है?

मुद्रा ताके हाथ की, सिद्धार्थक हू मित्र।
ताही के कर को लिख्यौ, पत्रहु साधन चित्र॥
मिलि कै शत्रुन सों करन, भेद भूलि निज धर्म।
स्वामि विमुख शकटहि कियौ, निश्चय यह खलं कर्म॥

मलयकेतु।—आर्य! श्रीमान् ने तीन आभरण भेजे सो मिले। यह जो आप ने लिखा है सो उसी में का एक आभरण यह भी है? (राक्षस के पहने हुए आभरण को देख कर आप ही आप। क्या यह पिता के पहने हुए आभरण हैं (प्रकाश) आर्य! यह आभरण आप ने कहां से पाया?

राक्षस।—जौहरी से मोल लिया था।

मलयकेतु।—बिजये! तुम इन आभरणों को पहचानती हो?

प्रतिहारी।—(देख कर आंसू भर के) कुमार! हम सुगृहीत नामधेय महाराज पर्व्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानेंगे?

मलयकेतु।—(आंखों में आंसू भर के)

भूषण प्रिय! भूषण सबै, कुलभूषण! तुव अंग।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन संग॥

राक्षस।—(आप ही आप) ये पर्व्वतेश्वर के पहिने हुए आभरण हैं? (प्रकाश) जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियों ने ही बेंचा है।

मलयकेतु।—आर्य! पिता के पहने हुए आभरण और फिर चन्द्रगुप्त के हाथ पड़े हुए जौहरी बेंचे: यह कभी हो नहीं सकता। अथवा हो सकता है।

अधिक लाभ के लोभ सों, क्रूर! त्यागि सब नेह।
बदले इन आभरन के, तुम बेंच्यौ मम देह॥

राक्षस।—(आप ही आप) अरे! यह दाव तो पूरा बैठ गया।

मम लेख नहिं यह किमि कहैं मुद्रा छपी जब हाथ की।
बिश्वास होत न शकट तजि है प्रीति कबहू साथ की॥

पुनि बोचिहैं नृप चन्द्र भूषन कौन यह पतियाइ है ।
ता सों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइ है ॥

मलयकेतु ।—आर्य ! हम यह पूछते हैं ।

राक्षस ।—जो आर्य हो उस से पूछो हम अब पापकारी अनार्य हो गए हैं ।

मलयकेतु ।—स्वामि पुत्र तुव मौर्य हम, मित्र पुत्र सह हेत ।
पैहो उत वाको दियो, इत तुम हम कों देत ॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत तुम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीनो यह पाप ॥

राक्षस ।—(आंखों में आंसू भर के) कुमार ! इस का निर्णय तो आप ही ने कर दिया—

स्वामि पुत्र मम मौर्य तुम, मित्र पुत्र सह हेतु ।
पैहैं उत वाको दियो, इत हम तुम कों देत ॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत हम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीनो यह पाप ॥

मलयकेतु ।—(चिट्ठी पेटी इत्यादि दिखला कर) यह सब क्या है ?

राक्षस ।—(आंखों में आंसू भर के) यह सब चाणक्य ने नहीं किया दैव ने किया ।

निज प्रभु सों करि नेह जे भृत्य समर्पत देह ।
तिन सों अपुने सुत सरिस सदा निबाहत नेह ॥
ते गुन गाहक नृप सबै जिन मारे छन मांहि ।
ताही बिधि को दोस यह औरन को कछु नांहि ॥

मलयकेतु ।—(क्रोधपूर्वक) अनार्य ! अब तक छल किए जाते हो कि यह सब दैव ने किया ।

विष कन्या दै पितु हत्यौ, प्रथम प्रीति उपजाय।
अब रिपु सों मिलि हम सबन, बधन चहत ललचाय॥

राक्षस।—(दुःख से आप ही आप) हां! यह और जले पर नमक है। (प्रगट कानों पर हाथ रख कर) नारायण! देव पर्व्वतेश्वर का कोई अपराध हम ने नहीं किया।

मलयकेतु।—फिर पिता को किस ने मारा?

राक्षस।—यह दैव से पूछो।

मलयकेतु।—दैव से पूछें। जीवसिद्धि क्षपणक से न पूछें?

राक्षस।—(आप ही आप) क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है! हाय! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर लिया?

मलयकेतु।—(क्रोध से) शिखरसेन सेनापति से कहो कि राक्षस से मिल कर चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करने को पांच राजे जो हमारा बुरा चाहते हैं, उन में कौलूत चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद और कश्मीराधीश पुष्कराक्ष ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इन को भूमि ही में गाड़ दे और सिन्धुराज सुषेण और पारसीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सेना चाहते हैं सो इन को हाथी ही के पैर के नीचे पिसवा दो। *

पुरुष। जो कुमार की आज्ञा। (जाता है)

मलयकेतु।—राक्षस! हम मलयकेतु हैं, कुछ तुम से

* यही बात ऐथीनियन लोगों ने दारा से कही थी। Wilson कहते हैं कि चाणक्य की आज्ञा से ये राजे सब क़ैद कर लिए गए थे, मारे नहीं गए थे।

विश्वासघाती राक्षस नहीं हैं * इस से तुम जाकर अच्छी तरह चन्द्रगुप्त का आश्रय करो।

चन्द्रगुप्त चाणक्य सों, मिलिए सुख सों आप।
हम तीनहुं को नासि हैं, जिमि त्रिबर्ग कहं पाप † ॥

भागुरायण।—कुमार! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिए। कुसुमपुर घेरने को हमारी सैना चढ़ चुकी है।

उड़िकै तियगन गंडजुगल कहं मलिन बनावति।
अलिकुल से कल अलकन निज कन धवल छुवावति॥
चपल तुरगखुर घात उठी घन घुमड़ि नवीनी।
सत्रु सीस पैं धूरि परै गजमद सों भीनी॥

[अपने भृत्यों के साथ मलयकेतु जाता है]

राक्षस।—(घबड़ा कर) हाय! हाय! चित्रवर्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए। हाय! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु को नहीं मित्रों ही को नाश करने को होती है। अब हम मन्दभाग्य क्या करैं।

जांहि तपोबन, पै न मन, शांत होत सह क्रोध।
प्रान देहिं? रिपु के जिअत, यह नारिन को बोध॥
खींचि खड्ग कर पतँग सम, जाहिं अनल अरि पास।
पै या साहस होइ है, चन्दनदास बिनास॥

(सोचता हुआ जाता है।)

पटाक्षेप। इतिपंचम अङ्क।

---

* अर्थात् हम तुम्हारा प्राण नहीं मारते।

† जैसे धर्म अर्थ काम को पाप नाश कर देता है।

छठा अङ्क ।

स्थान—नगर के बाहर सड़क ।

(कपड़ा गहिना पहिने हुए सिद्धार्थक आता है ।)

सिद्धार्थक ।—

जलद नील तन जयति जय, केशव केशी काल ।
जयति सुजन जन दृष्टि ससि, चन्द्रगुप्त नरपाल ॥
जयति आर्य्य चाणक्य की, नीति सहज बल भौन ।
बिनहीं साजे सैन नित, जीतत अरि कुल जौन ॥

चलो आज पुराने मित्र समिद्धार्थक से भेंट करैं (घूम कर) अरे ! मित्र समिद्धार्थक आप ही इधर आता है ।

(समिद्धार्थक आता है)

समिद्धार्थक ।—

मिटत ताप नहिं पान सों, होत उछाह बिनास ।
बिना मीत के सुख सबै, औरहु करत उदास ॥

सुना है कि मलयकेतु के कटक से मित्र सिद्धार्थक आ गया है । उसी को खोजने को हम भी निकले हैं कि मिलै तो बड़ा आनन्द हो । (आगे बढ़ कर) अहा ! सिद्धार्थक तो यहीं है । कहो मित्र अच्छे तो हो ?

सिद्धार्थक ।—अहा ! मित्र समिद्धार्थक आप ही आगए । (बढ़ कर)—कहो मित्र छेम कुशल तो है ?

(दोनों गले से मिलते हैं)

समिद्धार्थक ।—भला ! यहां कुशल कहां ? कि तुम्हारे ऐसा मित्र बहुत दिन पीछे घर भी आया तो बिना मिले फिर चला गया ।

सिद्धार्थक।—मित्र क्षमा करो। मुझ को देखते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि इस प्रिय वृत्तान्त को अभी चन्द्रमा सदृश प्रकाशित शोभावाले परम प्रिय महाराज प्रियदर्शन से जा कर कहो। मैं उसी समय महाराज के पास चला गया और उन से निवेदन कर के यह सब पुरस्कार पा कर तुम से मिलने को तुम्हारे घर अभी जाता ही था।

समिद्धार्थक।—मित्र! जो सुनने के योग्य हो तो महाराज प्रियदर्शन से जो प्रियवृत्तान्त कहा है वह हम भी सुनें।

सिद्धार्थक—मित्र! तुम से भी कोई बात छिपी है? सुनो। आर्य चाणक्य की नीति से मोहित मति हो कर उस नए मलयकेतु ने राक्षस को दूर कर दिया और चित्रवर्मादिक पांचो प्रबल राजों को मरवा डाला। यह देखते ही और सब राजे अपने प्राण और राज्य का संशय समझ कर उस को छोड़कर सैना सहित अपने अपने देश चले गए। जब शत्रु ऐसी निर्बल अवस्था में हुआ तो भद्रभट पुरुदत्त हिंगुरात बलगुप्त राजसेन भागुरायण रोहिताक्ष विजयवर्मा इत्यादि लोगों ने मलयकेतु को क़ैद कर लिया।

समिद्धार्थक।—मित्र! लोग तो यह जानते हैं कि भद्रभट इत्यादि लोग महाराज चन्द्रश्री को छोड़ कर मलयकेतु से मिल गए। तो क्या कुकवियों के नाटक की भांति इस के मुख में और तथा निर्वहण में और बात है *।

सिद्धार्थक।—वयस्य! सुनो। जैसे दैव की गति नहीं

* अर्थात् नाटक की उत्तमता यही है कि जिस वर्णन रीति और रस से आरम्भ हो वैसे ही समाप्त हो, यह नहीं कि पहिले कुछ पीछे कुछ।

जानी जाती वैसे ही आर्य चाणक्य की जिस नीति की भी गति नहीं जानी जाती उस को नमस्कार है।

समिद्धार्थक।—हां! कहो तब क्या हुआ?

सिद्धार्थक।—तब इधर से सब सामग्री ले कर आर्य चाणक्य बाहर निकले और विपक्ष के शेष राजाओं को निःशेष कर के बर्बर लोगों की सब सामग्री लूट ली।

समिद्धार्थक।—तो वह सब अब कहां हैं?

सिद्धार्थक।—वह देखो।

स्रवत गंडमद गरब गज, नदत मेघ अनुहार।
चाबुक भय चितवत चपल, खड़े अस्व बहु द्वार॥

समिद्धार्थक।—अच्छा यह सब जाने दो। यह कहो कि सब लोगों के सामने इतना अनादर पाकर फिर भी आर्य चाणक्य उसी मन्त्री के काम को क्यों करते हैं?

सिद्धार्थक।—मित्र! तुम अब तक निरे सीधेसाधे बने हो। अरे अमात्य राक्षस भी आर्य चाणक्य की जिन चालों को नहीं समझ सकते उन को हम तुम क्या समझेंगे।

समिद्धार्थक।—वयस्य! अमात्य राक्षस अब कहां हैं?

सिद्धार्थक।—उस प्रलय कोलाहल के बढ़ने के समय मलयकेतु की सैना से निकल कर उन्दुर नामक चर के साथ कुसुमपुर ही की ओर वह आते हैं, यह आर्य चाणक्य को समाचार मिला है।

समिद्धार्थक।—मित्र! नन्दराज्य के फिर स्थापन की प्रतिज्ञा कर के स्वनाम तुल्य पराक्रम अमात्य राक्षस, उस काम को पूरा किए बिना फिर कैसे कुसुमपुर आते हैं?

सिद्धार्थक।—हम सोचते हैं कि चन्दनदास के स्नेह से।

समिद्धार्थक।—ठीक है चन्दनदास के स्नेह ही से। किन्तु तुम सोचते हो कि चन्दनदास के प्राण बचैंगे?

सिद्धार्थक।—कहां उस दीन के प्राण बचैंगे? हमीं दोनों को बधस्थान में ले जाकर उस को मारना पड़ैगा।

समिद्धार्थक।—(क्रोध से) क्या आर्य चाणक्य के पास कोई घातक नहीं है कि ऐसा नीच काम हम लोग करैं?

सिद्धार्थक।—मित्र! ऐसा कौन है जिस को इस जीवलोक में रहना हो और वह आर्य चाणक्य की आज्ञा न मानै? चलो हम लोग चांडाल का वेष बना कर चन्दनदास को बधस्थान में ले चलैं।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक।

---

६ अङ्क।

दृश्य। बाहरी प्रान्त में प्राचीन बारी।

(फांसी हाथ में लिये हुए एक पुरुष आता है।)

पुरुष—षट गुन सुदृढ़ गुथी मुख फांसी।
जय उपाय परिपाटी गांसी॥
रिपु बन्धन मैं पटु प्रति पोरी।
जय चानक्य नीति की डोरी॥

आर्य चाणक्य के चर उन्दुर ने इसी स्थान में मुझ को अमात्य राक्षस से मिलने कहा है। (देखकर) यह अमात्य राक्षस सब अङ्ग छिपाए हुए आते हैं। तब तक इस पुरानी बारी में छिप कर हम देखें, यह कहां ठहरते हैं। (छिप कर बैठता है)

(सब अंग छिपाए हुए राक्षस आता है)

राक्षस—[आंखों में आंसू भर के] हाय! बड़े कष्ट की बात है।

आश्रय बिनसैं और पैं, जिमि कुलटा तिय जाय।
तजि तिमि नन्दहि चञ्चला, चन्द्रहि लपटी धाय॥
देखादेखी प्रजहु. सब, कीनो ता अनुगौन।
तजि कै निज नृप नेह सब, कियो कुसुमपुर भौन॥
होइ बिफल उद्योग मैं, तजि कै कारजभार।
आप्त मित्र हू थकि रहे, सिर बिनु जिमि अहि छार॥
तजि कै निज पति भुवनपति, सुकुल जात नृप नन्द।
श्री वृषली गइ वृषल ढिग, सील त्यागि करि छन्द॥
जाइ तहां थिर ह्वै रही, निज गुन सहज बिसारि।
बस न चलत जब बाम बिधि, सब कछु देत बिगारि॥
नन्द मरे सैलेश्वरहिं, देन चह्यौ हम राज।
सोऊ बिनसे तब कियो, तासुत हित सो साज॥
बिगर्‍यौ तौन प्रबन्ध हू, मिट्यौ मनोरथ मूल।
दोस कहा चानक्य को, दैवहि भो प्रतिकूल॥

वाहरे म्लेच्छ मलयकेतु की मूर्खता! जिस ने इतना नहीं समझा कि—

मरे स्वामिहू नहिं तज्यौ, जिन निज नृप अनुराग।
लोभ छाड़ि दे प्रान जिन, करी सत्रु सों लाग॥
सोई राक्षस सत्रु सों, मिलि है यह अन्धेर।
इतनो सूझ्यौ वाहि नहिं, दई दैव मति फेरि॥

सो अब भी शत्रु के हाथ में पड़ के राक्षस बन में चला जायगा, पर चन्द्रगुप्त से संधि न करैगा। लोग झूठा कहैं, यह अपयश हो, पर शत्रु की बात कौन सहैगा? (चारो ओर देख कर) हा! इसी प्रान्त में देवनन्द रथ पर चढ़ कर फिरने आते थे।

इतहि देव अभ्यास हित, सर सजि धनु सन्धानि।
रच्छत रहे भुव चित्र सम, रथ सुचक्र परिखानि॥
जहँ नृपगन संकित रहे, इत उत थमे लखात।
सोई भुव ऊजर भई, दृगन लखी नहिं जात॥

हाय! यह मन्द भाग्य अब कहां जाय? (चारो ओर देख कर) चलो इस पुरानी बारी में कुछ देर ठहर कर मित्र चन्दनदास का कुछ समाचार लें। (घूम कर आप ही आप) अहा! पुरुषों की भाग्य से उन्नति अवनति की भी क्या क्या गति होती है कोई नहीं जानता।

जिमि नव ससि कहँ सब लखत, निज निज करहि उठाय।
तिमि नृप सब हम को रहे, लखत अनन्द बढ़ाय॥
चाहत हे नृपगन सबै, जासु कृपा दृग कोर।
सो हम इत संकित चलत, मानहुँ कोऊ चोर॥

वा जिस के प्रसाद से यह सब था, जब वही नहीं है तो यह होईगा। (देख कर) यह पुराना उद्यान कैसा भयानक हो रहा है।

नसे बिपुल नृप कुल सरिस, बड़े बड़े गृह जाल।
मित्र नास सों साधुजन, हिय सम सूखे ताल॥
तरुवर भे फलहीन जिमि, बिधि बिगरे सब रीति।
तृन सों लोपी भूमि जिमि, मति लहि मूढ़ कुनीति॥
तीछन परसु प्रहार सों, कटे तरोवर गात।
रोअत मिलि पिंडुक संग, ताके घाव लखात *॥

* वृक्ष के खोड़रे में से जो शब्द निकलता है वही मानो वृक्ष रोते हैं और उन वृक्षों पर पेंड़की बोलती हैं वह मानो रोने में वृक्षों का साथ देती हैं।

दुखी जानि निज मित्र कहं, अहि मनु लेत उसास।
निज केंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरु व्रन पास ॥
तरुगन को सूख्यौ हियो, छिदे कीट सों गात ।
दुखी पत्र फल छाँह बिनु, मनु मसान सब जात ॥

तो तब तक हम इस सिला पर, जो भाग्यहीनों को सुलभ है, लेटैं। (बैठ कर और कान दे कर सुन कर) अरे ! यह शंख डंके से मिला हुआ नान्दी शब्द कहां हो रहा है ?

अति ही तीखन होन सों, फोरत स्रोता कान ।
जब न समायो घरन मैं, तब इत कियो पयान ॥
संख पटह धुनि सों मिल्यौ, भारी मंगल नाद ।
निकस्यौ मनहु दिगन्त की, दूरी देखन स्वाद ॥

[कुछ सोच कर] हां, जाना। यह मलयकेतु के पकड़े जाने पर राजकुल *[रुक कर] मौर्यकुल को आनन्द देने को हो रहा है।

[आंखों में आंसू भर कर] हाय ! बड़े दुःख की बात है।

मेरे बिनु अब जीति दल, शत्रु पाइ बल घोर ।
मोहि सुनावन हेत ही, कीन्हों शब्द कठोर।

पुरुष ।—अब तो यह बैठे हैं तो अब आर्य चाणक्य की आज्ञा पूरी करैं। [राक्षस की ओर न देख कर अपने गले में फांसी लगाना चाहता है।]

राक्षस ।—[देख कर आप ही आप] अरे यह फांसी क्यों लगाता है ? निश्चय कोई हमारा सा दुखिया है। जो होय, पूछै तो सही। [प्रकाश] भद्र यह क्या करते हो ?

* जहां ऐसी उक्ति होती है वहां यह ध्वनि है कि मानों ". पूर्व में जो कहा था वह ठीक है " रुक कर आग्रह से कुछ और कह दिया।

पुरुष।—(रोकर) मित्रों के दुःख से दुखी होकर हमारे ऐसे मन्दभाग्यों को जो कर्त्तव्य है।

राक्षस।—[आप ही आप] पहले ही कहा था, कोई हमारा सा दुखिया है। (प्रकाश) भद्र * जो अति गुप्त वा किसी विशेष कार्य की बात न हो तो हम से कहो कि तुम क्यों प्राण त्याग करते हो?

पुरुष।—आर्य! न तो गुप्त ही है न कोई बड़े काम की बात है परन्तु मित्र के दुःख से मैं अब क्षण भर भी ठहर नहीं सकता।

राक्षस।—(आप ही आप दुःख से) मित्र की विपत्ति में हम पराए लोगों की भांति उदासीन हो कर जो देर करते हैं मानों उस में शीघ्रता करने की यह अपना दुःख करने के बहाने शिक्षा देता है। (प्रकाश) भद्र! जो रहस्य नहीं है तो हम सुना चाहते हैं कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है?

पुरुष।—आप को इस में बड़ा ही हठ है तो कहना पड़ा। इस नगर में जिष्णुदास नामक एक महाजन है।

राक्षस।—(आप ही आप) वह तो चन्दनदास का बड़ा मित्र है।

पुरुष।—वह हमारा प्यारा मित्र है।

राक्षस।—(आप ही आप) कहता है कि वह हमारा प्यारा मित्र है। इस अति निकट सम्बन्ध से इस को चन्दनदास का वृत्तान्त ज्ञात होगा।

पुरुष।—(रोकर) "सो दीन जनों को सब धन दे कर वह अब अग्निप्रवेश करने जाता है।" यह सुन कर हम

---

* यहां संस्कृत में व्यसनि*ब्रह्मचारिन् सम्बोधन है।

यहां आए हैं कि "इस दुःखवार्त्ता सुनने के पूर्व ही अपना प्राण दे दें।"

राक्षस।—भद्र! तुम्हारे मित्र के अग्निप्रवेश का कारण क्या है?

कै तेहि रोग असाध्य भयो कोऊ जाको न औषध नाहिं निदान है।

पुरुष।—नहीं आर्य!

राक्षस।—कै विष अग्निहुसों वढ़ि कै नृपकोप महा फंसि त्यागत प्रान है॥

पुरुष।—रामराम! चन्द्रगुप्त के राज्य में लोगों को प्राण-हिंसा का भय कहां!

राक्षस।—कै कोउ सुन्दरि पै जिय देत लग्यौ हिय मांहि वियोग को बान है।

पुरुष।—रामराम! महाजन लोगों की यह चाल नहीं, विशेष कर के साधु जिष्णुदास को।

राक्षस।—तौ कहँ मित्रहि को दुःख वाह्य के नास के हेतु तुम्हारे समान है।

पुरुष।—हां, आर्य।

राक्षस।—[घबड़ा कर आप ही आप] अरे इस के मित्र का प्रिय मित्र तो चन्दनदास ही है और यह कहता है कि सुहृद विनाश ही उस के विनाश का हेतु है, इस से मित्र के स्नेह से मेरा चित्त बहुत ही घबड़ाता है। [प्रकाश] भद्र! तुम्हारे मित्र का चरित्र हम सविस्तर सुना चाहते हैं।

पुरुष।—आर्य! अब मैं किसी प्रकार से मरने में विलम्ब नहीं कर सकता।

राक्षस।—यह वृत्तान्त तो अवश्य सुनने के योग्य है इस से कहो।

पुरुष।—क्या करें। आप ऐसा हठ करते हैं तो सुनिए।

राक्षस।—हां! जी लगा कर सुनते हैं, कहो।

पुरुष।—आप ने सुना ही होगा कि इस नगर में प्रसिद्ध जौहरी सेठ चन्दनदास हैं।

राक्षस।—[दुःख से आप ही आप] दैव ने हमारे विनाश का द्वार अब खोल दिया। हृदय! स्थिर हो, अभी न जानें क्या क्या कष्ट तुम को सुनना होगा। (प्रकाश) भद्र! हम ने भी सुना है कि वह साधु अत्यन्त मित्र-वत्सल है।

पुरुष।—वह जिष्णुदास के अत्यन्त मित्र हैं।

राक्षस।—[आप ही आप] यह सब हृदय के हेतु शोक का वज्रपात है। [प्रकाश] हां, आगे।

पुरुष।—सो जिष्णुदास ने मित्र की भांति चन्द्रगुप्त से बहुत विनय किया।

राक्षस।—क्या क्या?

पुरुष।—कि देव! हमारे घर में जो कुछ कुटुम्बपालन का द्रव्य है आप सब ले लें, पर हमारे मित्र चन्दनदास को छोड़ दें।

राक्षस।—(आप ही आप) वाह जिष्णुदास! तुम धन्य हो! तुम ने मित्रस्नेह का निर्वाह किया।

जा धन के हित नारि तजैं पति पूत तजैं पितु सीलहिं खोई।
भाई सों भाई लरैं रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई॥
ता धन कों बनियां ह्वै गिन्यौ न दियो दुख मीत सों आरत होई।
स्वारथ अर्थ तुम्हारोई है तुमरे सम और न या जग कोई॥

(प्रकाश) इस बात पर मौर्य ने क्या कहा?

पुरुष।—आर्य ! इस पर चन्द्रगुप्त ने उस से कहा कि जिष्णुदास ! हम ने धन के हेतु चन्दनदास को नहीं दण्ड दिया है। इस ने अमात्य राक्षस का कुटुम्ब अपने घर में छिपाया और बहुत मांगने पर भी न दिया। अब भी जो यह दे दे तो छूट जाय, नहीं तो इस को प्राणदण्ड होगा तभी हमारा क्रोध शान्त होगा और दूसरे लोगों को भी इस से डर होगा। यह कह उस को बधस्थान में भेज दिया। जिष्णुदास ने कहा कि "हम कान से अपने मित्र का अमङ्गल सुनने के पहिले मर जाँय तो अच्छी बात है" और अग्नि में प्रवेश करने को बन में चले गए। हम ने भी इसी हेतु कि उन का मरण न सुनैं, यह निश्चय किया कि फांसी लगा कर मर जांय और इसी हेतु यहां आए हैं।

राक्षस।—(घबड़ा कर) अभी चन्दनदास को मारा तो नहीं?

पुरुष।—आर्य्य ! अभी नहीं मारा है, बारम्बार अब भी उन से अमात्य राक्षस का कुटुम्ब मांगते हैं और वह मित्रवत्सलता से नहीं देते इसी में इतना विलम्ब हुआ।

राक्षस।—(सहर्ष आप ही आप) वाह मित्र चन्दनदास ! वाह ! धन्य ! धन्य !

मित्र परोच्छहु मैं कियो, सरनागत प्रतिपाल।
निरमल जस सिबि*सो लियो, तुम या काल कराल॥

* शिवि ने शरणागत कपोत के हेतु अपना शरीर दे दिया था।

राजा शिवि जब ९२ यज्ञ कर चुके और आगे फिर प्रारम्भ किया तब इन्द्र को भय हुआ कि अब मेरा पद लेने मे आठ यज्ञ बाकी है उस ने अग्नि को कपोत बनाया और आप बाज बन उन के मारने को चला, तब वह भागा हुआ राजा की शरण मे गया। राजा ने उस का वचन, सुन बाज को देख यज्ञशाला

(प्रकाश) भद्र ! तुम शीघ्र जाकर जिष्णुदास को जलने से रोको; हम जाकर अभी चन्दनदास को छुड़ाते हैं ।

पुरुष ।—आर्य ! आप किस उपाय से चन्दनदास को छुड़ाइएगा ?

राक्षस ।—(आतङ्क से खड्ग मियान से खींच कर) इन दुःखों में एकान्त मित्र निष्कृप कृपाण से ।

समर साध तन पुलकित नित साथी मम कर को ।
रन महं बारहिं बार परिछ्यौ जिन बल पर को ॥
बिगत जलद नभ नील खड़्ग यह रोस बढ़ावत ।
मीत कष्ट सों दुखिहु मोहि रनहित उमगावत ॥

पुरुष ।—सेठ चन्दनदास के प्राण बचने का उपाय मैं ने सुना, किन्तु ऐसे टेढ़े समय में इस का परिणाम क्या होगा ? यह मैं नहीं कह सकता (राक्षस को देख कर पैर पर गिरता है) आर्य ! क्या सुगृहीत नामधेय अमात्य राक्षस आप ही हैं ? यह मेरा संदेह आप दूर कीजिए ।

में अपनी गोदी में छिपा लिया और बाज को निवारण किया । बाज बोला कि महाराज ! आप यहां यह क्या अनर्थ करते है कि मेरा आहार छीन लिया ! मैं भूख से शरीर को छोड़ आप को पापभागी करूंगा । तब राजा ने कहा कि इसे तो नही देंगे, इस के पलटे में जो मांगेगा सो देंगे, पश्चात् इस प्रति उत्तर में यह बात ठहरी कि राजा कबूतर के तुल्य तौल के शरीर का मांस दे तब हम कबूतर को छोड़ देवें । इस बात पर राजा प्रसन्न हो तुला पर एक ओर कपोत को बैठाय, दूसरी ओर अपने शरीर का मांस काट कर चढ़ाने लगे, परन्तु सब शरीर का मांस काट काट के चढ़ाय दिया तौ भी कबूतर के समान नहीं हुआ । तब राजा ने गले पर खड्ग चलाया त्योंही विष्णु ने हाथ पकड़ अपने लोक को भेज दिया ।

राक्षस।—भद्र! भर्तृकुल विनाश से दुखी और मित्र के नाश का कारण यथार्थ नामा अनार्य राक्षस मैं ही हूँ।

पुरुष—(फिर पैर पर गिरता है) धन्य हैं। बड़ा ही आनन्द हुआ। आप ने हम को आज कृतकृत्य किया।

राक्षस।—भद्र! उठो। देर करने की कोई आवश्यकता नहीं। जिष्णुदास से कहो कि राक्षस चन्दनदास को अभी छुड़ाता है।

(खड्ग खींचे हुए। 'समर साध' इत्यादि पढ़ता

हुआ इधर उधर टहलता है)

पुरुष।—(पैर पर गिर कर) अमात्यचरण! प्रसन्न हों। मैं यह बिनती करता हूँ कि चन्द्रगुप्त दुष्ट ने पहले शकट-दास के बध की आज्ञा दी थी। फिर न जानैं कौन शकटदास को छुड़ा कर उस को कहीं परदेस में भगा ले गया। आर्य शकटदास के बध में धोखा खाने से चन्द्रगुप्त ने क्रोध कर के प्रमादी समझ कर उन बधिकों ही को मार डाला। तब से बधिक जो किसी को बध-स्थान में ले जाते हैं और मार्ग में किसी को शस्त्र खींचे हुए देखते हैं तो छुड़ा ले जाने के भय से अपराधी को बीच ही में तुरंत मार डालते हैं। इस से शस्त्र खींचे हुए आप के वहां जाने से चन्दनदास की मृत्यु में और भी शीघ्रता होगी (जाता है)।

राक्षस।—(आप ही आप) उस चाणक्य बटु का नीति-मार्ग कुछ समझ नहीं पड़ता, क्योंकि—

सकट बच्यौ जो ता कहै, तो क्यौं घातक घात।
जाल भयो का खेल मैं, कछु समझ्यौ नहिं जात॥

(सोच कर) नहिं शस्त्र को यह काल यासों मीतजीवन जाइ है ।
जौ नीति सोचैं या समय तो व्यर्थ समय नसाइ है ॥
चुप रहनहू नहिं जोग जब मम हित विपति चन्दन परयौ ।
तासों बचावन प्रियहि अब हम देह निज विक्रय करयौ ॥

(तलवार फेंक कर जाता है)

छठां अंक समाप्त हुआ ।
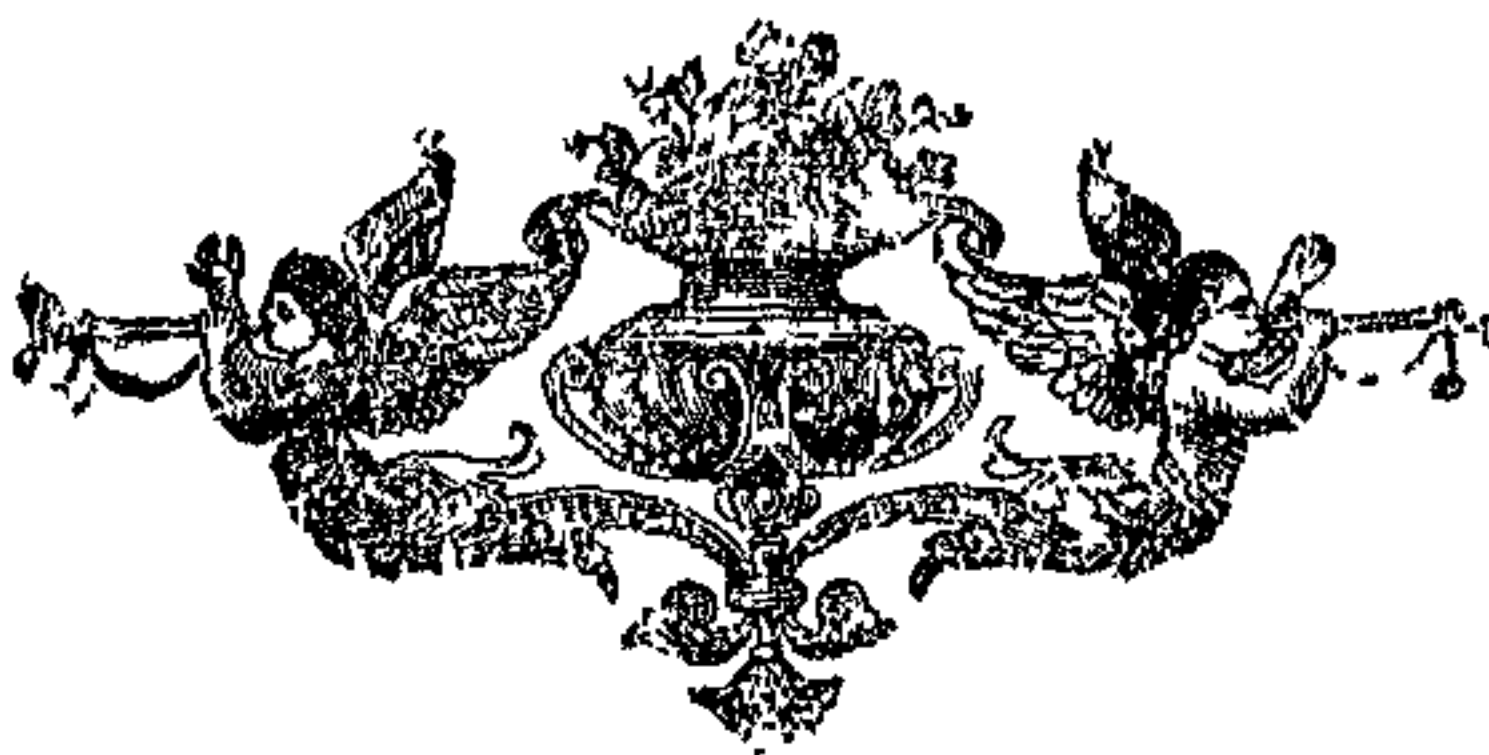
सप्तम अङ्क ।

स्थान—सूली देने का मसान ।

(पहिला चांडाल आता है)

चांडाल ।—हटो लोगो हटो, दूर हो भाइयो, दूर हो । जो अपना प्राण धन और कुल बचाना हो तो दूर हो । राजा का विरोध यत्नपूर्वक छोड़ो ।

करि कै पथ्य विरोध इक, रोगी त्यागत प्रान ।
पै विरोध नृप सों किए, नसत सकुल नर जान ॥

जो न मानो तो इस राजा के विरोधी को देखो जो स्त्री पुत्र समेत यहां सूली देने को लाया जाता है। (ऊपर देख कर) क्या कहा ? कि इस चन्दनदास के छूटने का कुछ उपाय भी है ? भला इस बिचारे के छूटने का कौन उपाय है ? पर हां, जो यह मंत्री राक्षस का कुटुम्ब दे दे तो छूट जाय । (फिर ऊपर देख कर) क्या कहा ? कि यह शरणागतवत्सल प्राण देगा पर यह बुरा कर्म्म न करैगा ? तो फिर इस की बुरी गति होगी, क्योंकि बचने का तो वही एक उपाय है ।

(कंधे पर सूली रक्खे मृत्यु का कपड़ा पहिने चन्दन-दास उस की स्त्री और पुत्र और दूसरा चांडाल आते हैं ।)

स्त्री ।—हाय हाय ! जो हम लोग नित्य अपनी बात बिगड़ने के डर से फूंक फूंक कर पैर रखते थे उन्हीं हम लोगों की चोरों की भांति मृत्यु होती है । काल देवता को नमस्कार है, जिस को मित्र उदासीन सभी एक से हैं, क्योंकि—

छोड़ि मांस भख मरन भय, जियहिं खाइ तृन घास।
तिन गरीब मृग को करहिं, निरदय व्याधा नास ॥

[चारों ओर देख कर]

अरे भाई जिष्णुदास ! मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते ? हाय ! ऐसे समय में कौन ठहर सकता है !

चं०दा० ।—[आंसू भर कर] हाय ! यह मेरे सब मित्र बिचारे कुछ नहीं कर सकते, केवल रोते हैं और अपने को अकर्मण्य समझ शोक से सूखा सूखा मुंह किए आंसू भरी आंखों से एक टक मेरी ही ओर देखते चले आते हैं।

दोनों चांडाल ।—अजी चन्दनदास ! अब तुम फांसी के स्थान पर आ चुके इस से कुटुम्ब को बिदा करो।

चं० दा० ।—(स्त्री से) अब तुम पुत्र को लेकर जाओ, क्योंकि आगे तुम्हारे जाने की भूमि नहीं है।

स्त्री ।—ऐसे समय में तो हम लोगों को बिदा करना उचित ही है, क्योंकि आप परलोक जाते हैं, कुछ परदेश नहीं जाते (रोती है)।

चं०दा०।—सुनो ! मैं कुछ अपने दोष से नहीं मारा जाता, एक मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, तो इस हर्ष के स्थान पर क्यों रोती है ?

स्त्री ।—नाथ ! जो यह बात है तो कुटुम्ब को क्यों बिदा करते हो ?

चं०दा०।—तो फिर तुम क्या कहती हो ?

स्त्री ।—(आंसू भर कर) नाथ ! कृपा कर के मुझे भी साथ ले चलो।

चं०दा०।—हा ! यह तुम कैसी बात कहती हो ! अरे तुम इस बालक का मुंह देखो और इस की रक्षा करो, क्योंकि

यह बिचारा कुछ भी लोकव्यवहार नहीं जानता। यह किस का मुंह देख के जीएगा ?

स्त्री।—इस की रक्षा कुलदेवी करेंगी। बेटा! अब पिता फिर न मिलेंगे इस से मिल कर प्रणाम कर ले।

बालक।—(पैरों पर गिर के) पिता! मैं आप के बिना क्या करूंगा ?

चं०दा०।—बेटा! जहां चाणक्य न हो वहां बसना।

दोनों चांडाल।—(सूली खड़ी कर के) अजी चन्दनदास! देखो सूली खड़ी हुई अब सावधान हो जाओ।

स्त्री। (रोकर) लोगो बचाओ, अरे कोई बचाओ।

चं०दा०।—भाइयो, तनिक ठहरो (स्त्री से) अरे अब तुम रो रो कर क्या नन्दों को स्वर्ग से बुला लोगी ? अब वे लोग यहां नहीं हैं जो स्त्रियों पर सर्वदा दया रखते थे।

१ चांडाल।—अरे वेणुवेत्रक! पकड़ इस चन्दनदास को, घरवाले आप ही रो पीट कर चले जायंगे।

२ चांडाल।—अच्छा बज्रलोमक, मैं पकड़ता हूं।

चं०दा०।—भाइयो! तनिक ठहरो, मैं अपने लड़के से तो मिल लूं (लड़के को गले लगा कर और माथा सूंघ कर) बेटा! मरना तो था ही पर एक मित्र के हेतु मरते हैं इस से सोच मत कर।

पुत्र।—पिता! क्या हमारे कुल के लोग ऐसा ही करते आए हैं ? (पैर पर गिर पड़ता है।)

२ चांडाल।—पकड़ रे बज्रलोमक (दोनों चंदनदास को पकड़ते हैं)।

स्त्री।—लोगो बचाओ रे बचाओ।

(वेग से राक्षस आता है)

राक्षस।—डरो मत, डरो मत। सुनो सुनो सैनापति! चन्दनदास को मत मारना, क्योंकि—

नसत स्वामिकुल जिन लख्यौ, निज अख शत्रु समान।
मित्रदुःख हू में धरयौ, निलज होइ जिन प्रान॥
तुम सों हारि बिगारि सब, कढ़ी न जाकी सांस।
ता राक्षस के कंठ मैं, डारहु यह जमफांस॥

चं०दा०। –(देख कर और आंखों में आंसू भर कर) अमात्य! यह क्या करते हो?

राक्षस।—मित्र, तुम्हारे सच्चरित्र का एक छोटा सा अनुकरण।

चं०दा०।—मेरा किया तो सब निष्फल हो गया, पर आप ने ऐसे समय यह साहस अनुचित किया।

राक्षस।—मित्र चंदनदास! उराहना मत दो, सभी स्वारथी हैं। (चांडाल से) अजी! तुम उस दुष्ट चाणक्य से कहो।

दोनों चांडाल।—क्या कहैं?

राक्षस।—

जिन कलि मैं हू मित्र हित, तून सम छोड़े प्रान।
जाके जस रवि सामुहे, शिवि जस दीप समान॥
जाको अति निर्म्मल चरित, दया आदि नित जानि।
बौद्धहु सब लाज्जित भए, परम शुद्ध जेहि मानि॥
ता पूजा के पात्र कों, मारत तू धरि पाप।
जाके हितु सो शत्रु तुव, आयो इत मैं आप॥

१ चांडाल।—अरे वेणुवेत्रक! तू चन्दनदास को पकड़ कर इस मसान के पेड़ की छाया में बैठ, तब से मन्त्री चाणक्य को मैं समाचार दूं कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

२ चांडाल।—अच्छा रे वज्रलोमक (चंदनदास, स्त्री बालक और सूली को ले कर जाता है)।

१ चांडाल।—(राक्षस को लेकर घूम कर) अरे! यहां पर कौन है? नन्दकुल सैनासंचय के चूरण करनेवाले बज्र से, वैसे ही मौर्य्यकुल में लक्ष्मी और धर्म्म स्थापना करने वाले, आर्य्य चाणक्य से कहो।

राक्षस।—(आप ही आप) हाय! यह भी राक्षस को सुनना लिखा था!

१ चांडाल।—कि आप की नीति ने जिस की बुद्धि को घेर लिया है, वह अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

(परदे में सब शरीर छिपाए केवल मुंह खोले चाणक्य आता है)

चाणक्य।—अरे कहो, कहो।

किन निज बसन हि मैं धरी, कठिन अगिनि की ज्वाल?
रोकी किन गति बायु की, डोरिन ही के जाल?
किन गजपति मर्दन प्रबल, सिंह पींजरा दीन?
किन केवल निज बाहु बल, पार समुद्रहि कीन?

१ चांडाल।—परमनीतिनिपुण आप ही ने तो।

चाणक्य।—अजी! ऐसा मत कहो, बरन "नंदकुलद्वेषी दैव ने" यह कहो।

राक्षस।—(देख कर आप ही आप) अरे! क्या यही दुरात्मा वा महात्मा कौटिल्य है!

सागर जिमि बहु रत्नमय, तिमि सब गुण की खानि।
तोष होत नहिं देखि गुण, बैरी हू निज जानि॥

चाणक्य।—(देख कर) अरे! यही अमात्य राक्षस हैं? जिस महात्मा ने—

बहु दुख सों सोचत सदा, जागत रैन बिहाय ।
मेरी मति अरु चन्द्र की, सैनहि दई थकाय ॥

(परदे से बाहर निकल कर) अजी अजी अमात्य राक्षस ! मैं विष्णुगुप्त आप को दण्डवत करता हूं । (पैर छूता है)—

राक्षस ।—(आप ही आप) अब मुझे अमात्य कहना तो केवल मुंह चिढ़ाना है (प्रगट) अजी 'विष्णुगुप्त!' मैं चांडालों से छू गया हूँ इस से मुझे मत छूओ ।

चाणक्य ।—अमात्य राक्षस ! वह श्वपाक नहीं है, वह आप का जाना सुना सिद्धार्थक नामा राजपुरुष है और दूसरा भी समिद्धार्थक नामा राजपुरुष ही है और इन्हीं दोनों द्वारा विश्वास उत्पन्न कर के उस दिन शकटदास को धोखा दे कर मैं ने वह पत्र लिखवाया था ।

राक्षस ।—(आप ही आप) अहा ! बहुत अच्छा हुआ कि, मेरा शकटदास पर से संदेह दूर हो गया ।

चाणक्य ।—बहुत कहां तक कहूँ—

वे सब भद्रभटादि वह, सिद्धार्थक वह लेख ।
वह भदन्त वह भूषणहु, वह नट आरत भेख ॥
वह दुख चन्दनदास को, जो कछु दियो दिखाय ।
सो सब मम (लज्जा से कुछ सकुच कर)
सो सब राजा चन्द्र को, तुम सों मिलन उपाय ॥

देखिए, यह राजा भी आप से मिलने आप ही आते हैं ।

राक्षस ।—(आप ही आप) अब क्या करूँ ? (प्रगट) हाँ ! मैं देख रहा हूँ ।

(सेवकों के संग राजा आता है)

राजा (आप ही आप) गुरु जी ने बिना युद्ध ही दुर्जय शत्रु का कुल जीत लिया इस में कोई संदेह नहीं, मैं तो बड़ा लज्जित हो रहा हूं, क्योंकि—

है बिनु काम लजाय करि, नीचो मुख भरि सोक ।
सोवत सदा निषङ्ग में, मम बानन के थोक ॥
सोवहिं धनुष उतारि हम, जदपि सकहिं जग जोति ।
जा गुरु के जागत सदा, नीति निपुण गत भीति ॥

(चाणक्य के पास जा कर) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

चाणक्य।—वृषल ! अब सब असीस सची हुई, इस से इन पूज्य अमात्य राक्षस को नमस्कार करो, यह तुम्हारे पिता के सब मन्त्रियों में मुख्य हैं।

राक्षस।—(आप ही आप) लगाया न इस ने सम्बन्ध !

राजा।—(राक्षस के पास जा कर) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

राक्षस।—(देख कर आप ही आप) अहा ! यही चन्द्रगुप्त है।

होनहार जाको उदय, बालपने हीं जोइ ।
राज लह्यौ जिन बाल गज, जूथाधिप सम होइ ॥

(प्रगट) महाराज ! जय होय ।

राजा।—आर्य्य !

तुमरे आछत बहुरि गुरु, जागत नीति प्रवीन ।
कहहु कहा या जगत में, जाहि न जय हम कीन ॥

राक्षस।—(आप ही आप) देखो, यह चाणक्य का सिखाया पढ़ाया मुझ से कैसी सेवकों की सी बात करता है। नहीं २, यह आप ही विनीत है।
अहा ! देखो, चन्द्रगुप्त पर डाह के बदले उलटा अनुराग होता है। चाणक्य सब स्थान पर यशस्वी है, क्योंकि—

पाइ स्वामि सतपात्र जौ, मन्त्री मूरख होइ ।
तौहू पावै लाभ जस, इत तौ पण्डित दोइ ॥

मूरख स्वामी लहि गिरै, चतुर सचिव हू हारि।
नदी तीर तरु जिमि नसत, जीरन ह्वै लहि बारि॥

चाणक्य।—क्यौं अमात्य राक्षस! आप क्या चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हैं?

राक्षस।—इस में क्या सन्देह है?

चाणक्य।—पर अमात्य! आप शस्त्र ग्रहण नहीं करते, इस से सन्देह होता है कि आप ने अभी राजा पर अनुग्रह नहीं किया। इस से जो सच्च ही चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हों तो यह शस्त्र लीजिए।

राक्षस।—सुनो विष्णुगुप्त! ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि हम लोग उस योग्य नहीं, विशेष कर के जब तक तुम शस्त्र ग्रहण किए हुए हो तब तक हमारा शस्त्र ग्रहण करने का क्या काम है?

चाणक्य।—भला अमात्य! आप ने यह कहां से निकाला, कि हम योग्य हैं और आप अयोग्य हैं? क्योंकि देखिए-

रहत लगामहिं कसे अश्व की पीठ न छोड़त।
खान पान असनान भोग तजि मुख नहिं मोड़त॥
छूटे सब सुख साज नींद नहिं आवत नयनन।
निसि दिन चौंकत रहत बीर सब भय धरि निज मन॥
वह हौदन सों सब छन कस्यौ नृप गजगन अवरेखिए।
रिपुदर्प दूर कर अति प्रबल निज महात्म बल देखिए॥

वा इन बातों से क्या आप के शस्त्र ग्रहण किये बिना तो चन्दनदास बचता भी नहीं।

राक्षस।—(आप ही आप)

नन्द नेह छूट्यौ नहीं, दास भए अरि साथ।
ते तरु कैसे काटि हैं, जे पाले निज हाथ॥

कैसे करिहैं मित्र पैं, हम निज कर सों घात।
अहो भाग्य गति अति प्रबल, मोहि कछु जानि न जात॥

(प्रकाश) अच्छा विष्णुगुप्त! मंगाओ खड्ग "नमस्सर्व्व कार्य्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय" देखो मैं उपस्थित हूं।

चाणक्य।—(राक्षस को खड्ग दे कर हर्ष से) राजन् वृषल! बधाई है बधाई है। अब अमात्य राक्षस ने तुम पर अनुग्रह किया। अब तुम्हारी दिन दिन बढ़ती ही है।

राजा।—यह सब आप की कृपा का फल है।

(पुरुष आता है)

पुरुष।—जय हो महाराज की, जय हो। महाराज! भद्रभट भागुरायणादिक मलयकेतु को हाथ पैर बांध कर लाए हैं और द्वार पर खड़े हैं; इस में महाराज की क्या आज्ञा होती है?

चाणक्य।—हां, सुना। अजी! अमात्य राक्षस से निवेदन करो, अब सब काम वही करेंगे।

राक्षस।—(आप ही आप) कैसे अपने वश में कर के मुझी से कहलाता है। क्या करैं? (प्रकाश) महाराज! चन्द्रगुप्त! यह तो आप जानते ही हैं कि हम लोगों का मलयकेतु का कुछ दिन तक सम्बन्ध रहा है। इस से उस के प्राण तो बचाने ही चाहिए।

राजा।—(चाणक्य का मुंह देखता है)

चाणक्य।—महाराज! अमात्य राक्षस की पहिली बात तो सर्व्वथा माननी ही चाहिये (पुरुष से) अजी! तुम भद्र भटादिकों से कह दो कि "अमात्य राक्षस के कहने से महाराज चन्द्रगुप्त मलयकेतु को उस के पिता का राज्य

देते हैं" इस से तुम लोग संग जा कर उस को राज पर बिठा आओ।

पुरुष।—जो आज्ञा।

चाणक्य।—अजी अभी ठहरो, सुनो! विजयपाल दुर्गपाल से यह कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र ग्रहण से प्रसन्न हो कर महाराज चन्द्रगुप्त यह आज्ञा करते हैं कि "चन्दनदास को सब नगरों का जगतसेठ कर दो।"

पुरुष।—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य।—चन्द्रगुप्त! अब और मैं क्या तुम्हारा प्रिय करूं?

राजा।—इस से बढ़ कर और क्या भला होगा?

मैत्री राक्षस सों भई, मिल्यौ अकंटक राज।
नन्द नसे सब अब कहा, यासों बढ़ि सुखसाज॥

चाणक्य।—(प्रतिहारी से) विजये! दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि "अमात्य राक्षस के मेल से प्रसन्न हो कर महाराज चन्द्रगुप्त आज्ञा करते हैं कि हाथी घोड़ों को छोड़ कर और सब बंधुओं का बन्धन छोड़ दो" वा जब अमात्य राक्षस मंत्री हुए तब अब हाथी घोड़ों का क्या सोच है? इस से—

छोड़ौ सब गज तुरग अब, कछु मत राखौ बाँधि।
केवल हम बाँधत सिखा, निज परतिज्ञा साधि॥

(शिखा बांधता है)

प्रतिहारी।—जो आज्ञा (जाती है)।

चाणक्य।—अमात्य राक्षस! मैं इस से बढ़ कर और कुछ भी आप का प्रिय कर सकता हूँ?

राक्षस ।—इस से बढ़ कर और हमारा क्या प्रिय होगा? पर जो इतने पर भी सन्तोष न हो तो यह आशीर्व्वाद सत्य हो।

"वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटिम्प्रलयपरिगताशिश्रिये भूतधात्री ॥
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवरं राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीम्पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः ॥"

(सब जाते हैं)

सप्तम अंक समाप्त हुआ ।

॥ इति ॥

APPENDIX A.

उपसंहार (अक्षर) क।

इस नाटक में आदि अंत तथा अंकों के विश्रामस्थल में रंगशाला में ये गीत गाने चाहिएं। यथा—

सब के पूर्व मंगलाचरण में।

(ध्रुवपद चौताला)

जय जय जगदीस राम, श्याम धाम पूर्ण काम, आनँद घन ब्रह्म विष्णु, सत् चित सुखकारी। कंस रावनादि काल, सतत प्रनत भक्तपाल, सोभित गल मुक्तमाल, दीनताप-हारी ॥ प्रेमभरण पापहरन, असरन जन सरन चरन, सुखहि करन दुखहि दरन, वृन्दावनचारी। रमाबास जग-निवास, राम रमन समनत्रास, बिनवत हरिचंद दास, जय जय गिरिधारी ॥१॥

(प्रस्तावना के अंत में प्रथम अङ्क के आरंभ में)

(चाल लखनऊ की ठुमरी "शाहजादे आलम तेरे लिये" इस चाल की)

जिन के हितकारक पण्डित हैं तिन को कहा सत्रुन को डर है। समुझैं जग में सब नीतिन्ह जो तिन्हैं दुर्ग बिदेस मनो घर है॥ जिन मित्रता राखी है लायक सों तिन कों तिनकाहू महा सर है। जिन की परतिज्ञा टरै न कबौं तिन की जय ही सब ही थर है॥ २ ॥

(प्रथम अंक की समाप्ति और दूसरे अंक के प्रारम्भ में)

जगत मैं घर की फूट बुरी। घर के फूटहि सों बिनसाई सुबरन लंकपुरी॥ फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो। जाको घाटो या भारत मैं अब लौं नहिं पुजयो॥ फूटहि सों जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होइ गुलाम॥ फूटहि सों नवनन्द बिनासे गयो मगध को राज। चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सह साज॥ जो जग मैं धन मान और बल अपुनो राखन होय। तो अपुने घर मैं भूलेहु फूट करौ मति कोय॥ ३॥

(दूसरे अंक की समाप्ति और तीसरे अंक के आरम्भ में)

जग मैं तेई चतुर कहावैं। जे सब बिधि अपने कारज कों नीकी भांति बनावैं॥ पढ्यौ लिख्यौ किन होइ जुपै नहिं कारज साधन जानै। ताही कों मूरख या जग मैं सब कोऊ अनुमानै॥ छल मैं पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहु गायो। पै अरि सों छल किए दोष नहिं मुनियन यहै बतायो॥ ४॥

(तीसरे अंक की समाप्ति और चतुर्थ अंक के आरंभ में)

ठुमरी—तिन को न कछू कबहूं बिगरै, गुरु लोगन को कहनो जे करैं। जिन कों गुरु पन्थ दिखावत हैं ते कुपन्थ पैं भूलि न पांव धरैं॥ जिन कों गुरु रच्छत आप रहैं ते बिगारे न बैरिन के बिगरैं। गुरु को उपदेस सुनौ सब ही, जग कारज जासों सबै समरैं॥ ५॥

(चतुर्थ अंक की समाप्ति और पंचम अंक के आरंभ में)

पूरबी—करि मूरख मित्र मिताई, फिर पछतैहो रे भाई। अंत दगा खैहौ सिर धुनिहौ रहिहौ सबै गँवाई॥ मूरख जो कछु हितहु करै तो तामैं अन्त बुराई। उलटो उलटो काज करत सब दैहै अन्त नसाई॥ लाख करौ हित मूरख सों पै ताहि न कछु समझाई। अन्त बुराई सिर पैं ऐहै रहि जैहो मुंह बाई॥ फिर पछितैहो रे भाई॥६॥

(पंचम अंक की समाप्ति और षष्ठ अंक के आरम्भ में)

काफी ताल होली का।

छलियन सों रहो सावधान नहिं तो पछताओगे। इन की बातन में फंसि अपुनो सबहि गंवाओगे॥ स्वारथ लोभी जन सों आखिर दगा उठाओगे। तब सुख पैहो जब सांचन सों नेह बढ़ाओगे॥ छलियन सों० ॥७॥

(छठें अंक की समाप्ति और सातयें अंक के आरम्भ में)

('जिन के मन में सिय राम बसैं' इस धुन को)

जग सूरज चंद टरैं तो टरैं पै न सज्जननेहु कबौं बिचलै। धन संपति सर्बस गेह नसौ नहिं प्रेम की मेड़ सों पड़ टलै॥ सतवादिन कों तिन का सम प्रान रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै। निज मीत की प्रीत प्रतीत रहौ इक और सबै जग जाउ भलै॥८॥

(अंत में गाने को) (विहाग—श्लोक के अर्थ अनुसार)

हरौ हरि रूप सबै जग बाधा। जा सरूप सों धरनि उधारी निज जन कारज साधा॥ जिमि तव दाढ़ अग्र लै

राखी महि हति असुर गिरायो। कनक दृष्टि म्लेच्छन हुँ तिमि किन अब लौं मारि नसायो॥ आरज राज रूप तुम तासों मांगत यह बरदाना। प्रजा कुमुदगन चन्द्र नृपति को करहु सकुल कल्याना॥९॥

(बिहाग ठुमरी)

पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीओ सदा विकटो-रिया रानी। ' सूरज चंद्र प्रकास करैं जब लौं रहैं सात हू सिन्धु मैं पानी॥ राज करौ सुख सों तबलौं निज पुत्र औ पौत्र समेत सयानी। पालौ प्रजागन कों सुख सों जग कीरति गान करैं गुन गानी॥ १०॥

कलिंगड़ा—लहौ सुख सब बिधि भारतबासी। विद्या कला जगत की सीखौ तजि आलस की फांसी॥ अपनो देस धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी। उद्यम करि-कै होहु एक मति निज बल बुद्धि प्रकासी॥ पंचपीर की भगति छाड़ि कै ह्वै हरिचरन उपासी। जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुनरासी।

APPENDIX B.

उपसंहार (अक्षर) ख।

इस नाटक के विषय में विलसन साहिब लिखते हैं कि यह नाटक और नाटकों से अति विचित्र है, क्योंकि इस में सम्पूर्ण राजनीति के व्यवहारों का वर्णन है। चन्द्रगुप्त (जो युनानी लोगों का सैन्ड्रोकोतस Sandrocottus है) और पाटलिपुत्र (जो यूरप को पालीबोत्तरा Palibothra है) के वर्णन का ऐतिहासिक नाटक होने के कारण यह विशेष दृष्टि देने के योग्य है।

इस नाटक का कवि बिशाखदत्त, महाराज पृथु का पुत्र और सामन्त बटेश्वरदत्त का पौत्र था। इस लिखने से अनुमान होता है कि दिल्ली के अन्तिम हिन्दूराजा पृथ्वीराज चौहान ही का पुत्र बिशाखदत्त है, क्योंकि अन्तिम श्लोक से विदेशी शत्रु की जय की ध्वनि पाई जाती है, भेद इतना ही है कि रायसे में पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और दादा का आनन्द लिखा है। मैं यह अनुमान करता हूं कि सामन्तबटेश्वर इतने बड़े नाम को कोई शीघ्रता में या लघु कर के कहे तो सोमेश्वर हो सकता है और सम्भव है कि चन्द ने भाषा में सामन्त बटेश्वर को ही सोमेश्वर लिखा हो।

मेजर विलफर्ड ने मुद्राराक्षस के कवि का नाम गोदावरी-तीर निवासी अनन्त लिखा है, किन्तु यह केवल भ्रममात्र

है। जितनी प्राचीन पुस्तकें उत्तर वा दक्षिण में मिलीं, किसी में अनन्त का नाम नहीं मिला है।

इस नाटक पर बटेश्वर मैथिल पण्डित की एक टीका भी है। कहते हैं कि गुहसेन नामक किसी अपर पण्डित की भी एक टीका है, किन्तु देखने में नहीं आई। महाराज तंजौर के पुस्तकालय में व्यासराज यज्वा की एक टीका और है।

चन्द्रगुप्त * की कथा विष्णुपुराण भागवत आदि पुराणों में और बृहत्कथा में वर्णित हैं। कहते हैं कि बिकटपल्ली के राजा चंद्रदास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है।

महानन्द अथवा महापद्मनन्द भी शूद्रा के गर्भ से था और कहते हैं कि चन्द्रगुप्त इस की एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था। यह पूर्वपीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इस पाटलि-पुत्र (पटने) के विषय में यहां कुछ लिखना अवश्य हुआ। सूर्यवंशी सुदर्शन † राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व में इस नगर को बसाया। कहते हैं कि कन्या को बंध्यापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उस का नाम पाटलिपुत्र रक्खा था। वायुपुराण में "जरासन्ध के पूर्वपुरुष वसु राजा ने बिहार प्रान्त का राज्य संस्थापन

---

* प्रियदर्शी, प्रियदर्शन, चन्द्र, चन्द्रगुप्त, श्रीचन्द्र, चंद्रश्री, मौर्य, यह सब चन्द्रगुप्त के नाम हैं और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रौमिल वा द्रौहिण, अंशुल, कौटिल्य, यह सब चाणक्य के नाम हैं।

† सुदर्शन सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामान्तर था, किसी २ ने भ्रम से पाटली को शूद्रक की कन्या लिखा है।

किया " यह लिखा है। कोई कहते हैं कि " वेदों में जिस वसु के यश का वर्णन है वही राज्यगिरि राज्य का संस्थापक है। " (जो लोग चरणाद्रि को राजगृह का पर्वत बतलाते हैं उन को केवल भ्रम है।) इस राज्य का प्रारम्भ चाहे जिस तरह हुआ हो, पर जरासन्ध ही के समय से यह प्रख्यात हुआ। मार्टिन साहब ने जरासन्ध के विषय में एक अपूर्व्व कथा लिखी है। वह कहते हैं कि जरासन्ध दो पहाड़ियों पर दो पैर रख कर द्वारका में जब स्त्रियां नहाती थीं तो ऊंचा हो कर उन को घूरता था इसी अपराध पर श्री कृष्ण ने उस को मरवा डाला !!!

मगध शब्द मग से बना है। कहते हैं कि " श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्ठान करने को बुलाया था और वे जिस देश में बसे उस को मगध संज्ञा हुई।" जिन अंगरेज़ विद्वानों ने 'मगध देश' शब्द को मद्ध (मध्यदेश) का अपभ्रंश माना है उन्हें शुद्ध भ्रम हो गया है। जैसा कि मेजर विलफर्ड पालीबोत्रा को राजमहल के पास गङ्गा और कोसी के सङ्गम पर बतलाते और पटने का शुद्ध नाम पद्मावती कहते हैं। यों तो पाली इस नाम के कई शहर हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध हैं, किन्तु पाली-बोत्रा पाटलिपुत्र ही है। सोन के किनारे मावलीपुर एक स्थान है जिस का शुद्ध नाम महाबलीपुर है। महाबली नन्द का नामान्तर भी है, इसी से और वहां प्राचीन चिन्ह मिलने से कोई कोई शंका करते हैं, कि बलीपुर वा बलीपुत्र का पालीबोत्रा अपभ्रंश है, किन्तु यह भी भ्रम ही है। राजाओं के नाम से अनेक ग्राम बसते हैं इस में कोई हानि नहीं, किन्तु इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी।

कुछ विद्वानों का मत है कि मग लोग मिश्र से आए और यहां आकर Isiris और Osiris नामक देव और देवी की पूजा प्रचलित की। यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश बोध होते हैं। किसी पुराण में "महाराज दशरथ ने शाकद्वीपियों को बुलाया" यह लिखा है। इस देश में पहले कोल और चेरू (चोल) लोग बहुत रहते थे। शुनक और अजक इस वंश में प्रसिद्ध हुए। कहते हैं कि इन दोनों को लड़कर ब्राह्मणों ने निकाल दिया। इसी इतिहास से भुईंहार जाति का भी सूत्रपात होता है और जरासन्ध के यज्ञ से भुईंहारों की उत्पत्ति वाली किम्बदन्ती इस का पोषण करती है। बहुत दिन तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहां राज्य करते रहे। किन्तु एक जैन पण्डित 'जो ८०० वर्ष ईसा-मसीह के पूर्व हुआ है' लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीत कर निकाल दिया। कहते हैं कि बिहार के पास बारागंज में इस के किले का चिन्ह भी है। यूनानी विद्वानों और वायुपुराण के मत से उदयाश्व ने मगधराज संस्थापन किया। इस का समय ५५० ई० पू० बतलाते हैं और चन्द्रगुप्त को इस से तेरहवां राजा मानते हैं। यूनानी लोगों ने सोन का नाम Erannob-aos (इरन्नोबाओस) लिखा है, यह शब्द हिरण्यबाह का अपभ्रंश है। हिरण्यबाह, स्वर्णनद और शोन का अपभ्रंश सोन है। मेगास्थिनस अपने लेख में पटने के नगर को ८० स्टेडिया (आठ मील) लंबा और १५ चौड़ा लिखता है, जिस से स्पष्ट होता है कि पटना पूर्वकाल ही से लम्बा नगर है * उस ने उस समय नगर के चारो ओर ३० फुट गहिरी

---

* जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियों ने उस समय इस धूम से किया है उस की वर्त्तमान स्थिति यह है। पटने का जिला २४° ५८' से २५°

खाई, फिर ऊंची दीवार और उस में ५७० बुर्ज और ६४ फाटक लिखे हैं। यूनानी लोग जो इस देश को Prassi प्रासिस कहते हैं वह पालाशी का अपभ्रंश बोध होता है, क्योंकि जैनग्रंथों में उस भूमि के पलाश वृक्ष से आच्छादित होने का वर्णन देखा गया है।

जैन और बौद्धों से इस देश से और भी अनेक सम्बन्ध हैं। मसीह से छ सौ बरस पहले बुद्ध पहलेपहल राजगृह ही में उदास हो कर चले गए थे। उस समय इस देश की बड़ी समृद्धि लिखी है और राजा का नाम बिम्बसार लिखा है। (जैन लोग अपने बीसवें तीर्थंकर सुव्रत स्वामी का राजगृह में कल्याणक भी मानते हैं।) बिम्बसार ने राजधानी के पास ही इन के रहने को कलद नामक बिहार भी बना दिया था। फिर अजातशत्रु और अशोक के समय में भी बहुत से स्तूप बने। बौद्धों के बड़े बड़े धर्मसमाज इस देश में हुए। उस काल में हिन्दू लोग इस बौद्ध धर्म के अत्यन्त विद्वेषी थे। क्या आश्चर्य है कि बुद्धों के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगों ने अपवित्र ठहराया हो और गौतम की निन्दा ही के हेतु अहिल्या की कथा बनाई हो।

---

४२ लैटि० और ८४ ४४ से ८६ ०५ लौंग० पृथ्वी २१०१ मील समचतुष्कोन। १५५९६६३८ मनुष्यसंख्या। पटने की सीमा उत्तर गङ्गा, पश्चिम सोन, पूर्व मुंगेर का जिला और दक्षिण गया का जिला। नगर की बस्ती अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हजार घर हैं। साढ़े आठ लाख मन के लगभग बाहर से प्रतिवर्ष यहां माल आता और पांच लाख मन के लगभग जाता है। हिन्दुओं में छ जाति यहां विशेष हैं। यथा एक लाख अस्सी हजार ग्वाला, एक लाख सत्तर हजार कुनबी, एक लाख सत्रह हजार भुइंहार, पचासी हजार चमार, अस्सी हजार कोइरी और साठ हजार राजपूत। अब दो लाख के आस पास मुसलमान पटने के जिले में बसते हैं।

भारत नक्षत्र नक्षत्री राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे भाग में इस समय और देश के विषय में जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं। इस से बहुत सी बातें उस समय की स्पष्ट हो जांयगी।

प्रसिद्ध यात्री हिआन सांग सन् ६३७ ई० में जब भारतवर्ष में आया था तब मगधदेश हर्षवर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार में था। किन्तु दूसरे इतिहासलेखक सन् २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते हैं और अंध्रवंश का भी राज्यचिन्ह सम्भलपुर में दिखलाते हैं।

सन् १२६२ ई० में पहले इस देश में मुसलमानों का राज्य हुआ। उस समय पटना, बनारस के बन्दावत राजपूत राजा इंद्रदमन के अधिकार में था। सन् १२२५ में अलतिमश ने गयासुद्दीन को मगध प्रान्त का स्वतन्त्र सूबेदार नियत किया। इस के थोड़े ही काल पीछे फिर हिन्दू लोग स्वतन्त्र हो गए। फिर मुसलमानों ने लड़ कर अधिकार किया सही, किन्तु झगड़ा नित्य होता रहा। यहां तक कि सन् १३६३ में हिन्दू लोग स्वतन्त्र रूप में फिर यहां के राजा हो गए और तीसरे महमूद की बड़ी भारी हार हुई। यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था। इस समय में गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश छोड़ कर लड़ने आए *। ये और पञ्जाब

* गया के भूगोल में पण्डित शिवनारायण त्रिवेदी भी लिखते हैं—"औरंगाबाद से तीन कोस अग्निकोण पर देव बड़ी भारी बस्ती है। यहां श्रीभगवान् सूर्य्यनारायण का बड़ा भारी संगीन पच्छिम रुख का मन्दिर है। यह मन्दिर

से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिन्दू मगध देश में आकर प्राणत्याग करना बड़ा पुण्य समझते थे। प्रजापाल नामक एक राजा ने सन् १४०० के लगभग बीस बरस मगधदेश को स्वतन्त्र रक्खा। किन्तु आर्य्यमत्सरी दैव ने यह स्वतन्त्रता स्थिर नहीं रक्खी और पुण्यधाम गया फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। सन् १४७८ तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार में रहा। फिर बहलूलवंश ने इस को जीत लिया था, किन्तु १४६१ में

देखने से बहुत प्राचीन जान पड़ता है। यहां कातिक और चैत की छठ को बड़ा मेला लगता है। दूर दूर के लोग यहां आते और अपने अपने लड़कों का मुण्डन छेदन आदि की मनौती उतारते हैं। मन्दिर से थोड़ी दूर दक्खिन बाजार के पूरब ओर सूर्य्यकुंड का तालाव है। इस तालाव से सटा हुआ और एक कच्चा तालाव है उस में कमल बहुत फूलते हैं। देव राजधानी है। यहां के राजा महाराजाउदयपुर के घराने के मड़ियार राजपूत है। इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम मे बहुत प्रसिद्ध होते आये है। यहां के महाराज श्री जयप्रकाश सिंह के० सी० एस० आई० बड़े शूर सुशील और उदार मनुष्य थे। यहां से दो कोस दक्खिन कंचनपुर मे राजा साहिब का बाग और मकान देखने लायक बना है। देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है, उस के पास पहाड़ के ऊपर देव के सूर्य्यमन्दिर के ढंग का एक महादेव का मन्दिर है। पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है। जान पड़ता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहां ही रहते थे, पीछे देव में बसे। देव और उमगा दोनों इन्हीं की राजधानी थी, इस से दोनों नाम साथ ही बोले जाते हैं (देवमूंगा) तिल संक्रांति को उमगा में बड़ा मेला लगता है।" इस से स्पष्ट हुआ कि उदयपुर से जो राणा लोग आये उन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं। और बिहारदर्पण से भी यह बात पाई जाती है कि मड़ियार लोग मेवाड़ से आये हैं।

हुसेनशाह ने फिर जीत लिया। इस के पीछे बंगाल के पठानों से और जौनपुरवालों से कई लड़ाई हुई और १४९४ में दोनों राज्य में एक सुलहनामा हो गया। इस के पीछे सूर लोगों का अधिकार हुआ और शेरशाह ने बिहार छोड़ कर पटने को राजधानी किया। सूरों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई०) यह देश मुग़लों के अधीन हुआ और अन्त में जरासन्ध और चन्द्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य वेश और आर्य नाम परित्याग कर के औरङ्गज़ेब के पोते अजीमशाह के नाम पर अपना नाम अज़ीमाबाद प्रसिद्ध किया। (१६९७ ई०) बंगाले के सूबेदारों में सब से पहले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतन्त्र समझा था, किन्तु १७५७ ई० की पलासी की लड़ाई में मीरजाफर अङ्गरेजों के बल से बिहार, बंगाल और उड़ीसा का अधिनायक हुआ। किन्तु अन्त में जगद्विजयी अङ्गरेजों ने सन् १७६३ में पूर्व में पटना अधिकार कर के दूसरे बरस बकसर की प्रसिद्ध लड़ाई जीत कर स्वतन्त्र रूप से सिंहचिन्ह की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रांत मात्र को हिन्दोस्तान के मानचित्र में लाल रङ्ग से स्थापित कर दिया।

जस्टिन (Justin) कहता है (१) सन्द्रकुत्तस महा पराक्रमी था। असंख्य सैन्य संग्रह कर के विरुद्ध लोगों का इस ने सामना किया था। डियोडारस सिक्यूलस (Deodorus Siculus) कहता है (२) प्राच्यदेश के राजा ज़न्द्रमा के पास २०००० अश्व, २०००००पदाती, २००० रथ और ४००० हाथी थे। यद्यपि यह Xandramas शब्द चन्द्रमा का अपभ्रंश है, किन्तु कई भ्रान्त यूनानियों ने नन्द को भी इसी

(1) Justin His. Phellipp. Lib. XV Chap. IV,
(2) Deodorus Siculus XVII. 93.

नाम से लिखा है। क्विन्तस करशिअस (Quintus Curtius) लिखता है (३) चन्द्रमा के क्षौरकार पिता ने पहले मगध राज को फिर उस के पुत्रों को नाश कर के रानी के गर्भ में अपने उत्पन्न किए हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया। स्ट्राबो (Strabo) कहता है (४) सेल्यूकस ने मेगास्थनिस को संद्रकुत्तस के निकट भेजा और अपना भारतवर्षीय समस्त राज्य देकर उस से संधि कर लिया। आरियन (Orriun) (५) लिखता है कि मेगास्थनिस अनेक बार सन्द्रकुत्तस की सभा में गया था। प्लूटर्क (Plutarch) ने (६) चन्द्रगुप्त को दो लाख सेना का नायक लिखा है। इन सब लेखों को पौराणिक वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकन्दरकृत पुरुपराजय के पीछे मगधराज मन्त्री द्वारा निहत हुए और उन के लड़के भी उसी गति को पहुंचे और उस के पीछे चन्द्रगुप्त राजा हुआ; किन्तु बहुत से यूनानी लेखकों ने चन्द्रगुप्त को पट्टरानी के गर्भ में क्षौरकार से उत्पन्न लिख कर व्यर्थ अपने को भ्रम में डाला है। चन्द्रगुप्त क्षत्रियबीर्य से दासी में उत्पन्न था यह सर्व साधारण का सिद्धान्त है। (७) इस क्रम से ३२७ ई० पू० में नन्द का मरण और ३१४ ई० पू० में चन्द्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है। पारस देश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति

(3) Quintus Curtius IX. 2.

(4) Strabo XV. 2. 9.

(5) Orriun Indica X. 5.

(6) Plutarch Vita Alexandri O. 62.

(७) टाड आदि कई लोगों का अनुमान है कि मोरी वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चित्तौर के राजा थे वे भी मौर्य थे। क्या चन्द्रगुप्त चौहान थे? या ये मोरी सब शूद्र थे?

सुन्दर कन्या हुई थी वही चन्द्रगुप्त को दी गई। ३०२ ई०पू० में यह सन्धि और बिवाह हुआ, इसी कारण अनेक यवन-सेना चन्द्रगुप्त के पास रहती थी। २६२ ई० पूर्व में चन्द्रगुप्त २४ बरस राज्य कर के मरा।

चन्द्रगुप्त के इस मगधराज्य को आईनेअकबरी में मकता लिखा है। डिग्विगनेस (Deguignes) कहता है कि चीनी मगध देश को मकियात कहते हैं। केम्फर (Kemfer) लिखता है कि जापानी लोग उस को मगैत् कफ कहते हैं (कफ शब्द जापानी में देशबाची है।) प्राचीन लेखकों ने इस देश का नाम मावाद वा मुवाद लिखा है। मगधराज्य में अनुगांग प्रदेश मिलने ही से तिब्बतवाले इस देश को अनुखेक वा अनोनखेक कहते हैं। और तातार वाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं।

सिसली डिउडोरस ने लिखा है, कि मगधराजधानी पालीपुत्र भारतवर्षीय हर्क्यूलस देवता द्वारा स्थापित हुई। सिसिरो ने इन्हीं हर्क्यूलस (हरि कुल) देवता का नामांतर बेलस (बलः) लिखा है। बल शब्द बलदेव जी का बोध करता है और इन्हीं का नामान्तर बली भी है। कहते हैं कि निजपुत्र अङ्गद के निमित्त बलदेव जी ने यह पुरी निर्माण की, इसी से बलीपुत्र पुरी इस का नाम हुआ। इसी से पालीपुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया। पाली भाषा पाली धर्म पाली देश इत्यादि शब्द भी इसी से निकले हैं। कहते हैं बाणासुर के बसाए हुए जहां तीन पुर थे उन्हीं को जीत कर बलदेव जी ने अपने पुत्रों के हेतु पुर निर्माण किए। यह तीनों नगर महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास हाते में, एक बिदर्भदेश में (मुज़फ़्फ़रपुर वर्त्तमाम नाम) और एक (राजमहल वर्त्तमान नाम से) बङ्गदेश में है। कोई कोई

बालेश्वर मैसूर पुरनियां प्रभृति को भी बाणासुर की राजधानी बतलाते हैं। यहां एक बात बड़ी विचित्र प्रकट होती है। बाणासुर भी बलीपुत्र है। क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलिपुत्र शब्द निकला हो। कोई नन्द ही का नामान्तर महाबली कहते हैं और कहते हैं कि पूर्व में गङ्गाजी के किनारे नन्द ने केवल एक महल बनाया था, उस के चारों ओर लोग धीरे २ बसने लगे और फिर वह पत्तन (पटना) हो गया। कोई महाबली के पितामह उदसी (उदासी, उदय, श्रीउदय सिंह ?) ने ४५० ई०पू० इस को बसाया मानते हैं। कोई पाटली देवी के कारण पाटलिपुत्र नाम मानते हैं।

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम सुमाल्य लिखा है। बृहत्कथा में लिखते हैं कि शकटाल ने इन्द्रदत्त का शरीर जला दिया इस से योगानन्द (अर्थात् नन्द के शरीर में इन्द्रदत्त की आत्मा) फिर राजा हुआ। व्याड़ि जाने के समय शकटाल को नाश करने का मंत्र दे गया था। वररुचि मन्त्री हुआ, किन्तु योगानन्द ने मदमत्त होकर उस को नाश करना चाहा, इस से वह शकटार के घर में छिपा। उस की स्त्री उपकोशा पति को मृत समझ कर सती हो गई। योगानन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किन्तु फिर तपोबन में चला गया। फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नन्द के नाश का कारण हुआ। उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त जो कि योगानन्द का पुत्र था उस को मार कर चन्द्रगुप्त को, जो कि असली नन्द का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया।

ढुंढि परिडत लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दों में मुख्य था। इस को दो स्त्री थी। सुनन्दा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी, उस का नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहां गया और ऋषिकृत मार्जन के समय सुनन्दा पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी। मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रसन्न होकर बरदान दिया। सुनन्दा को एक मांसपिण्ड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने मांसपिण्ड काट कर नौ टुकड़े किये, जिन से नौ लड़के हुए। मौर्य को सौ लड़के थे, जिन में चन्द्रगुप्त सब से बड़ा बुद्धिमान् था। सर्वार्थसिद्धि ने नन्दों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नन्दों ने ईर्षा से मौर्य और उस के लड़कों को मार डाला, किन्तु चन्द्रगुप्त चाणक्य ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नन्दों को नाश कर के राजा हुआ।

योंही भिन्न भिन्न कवियों और विद्वानों ने भिन्न भिन्न कथा लिखी हैं। किन्तु सब के मूल का सिद्धान्त पास पास एक ही आता है।

इतिहासतिमिरनाशक में इस विषय में जो कुछ लिखा है वह नीचे प्रकाश किया जाता है।

बिम्बसार को उस के लड़के अजातशत्रु ने मार डाला। मालूम होता है कि यह फ़साद ब्राह्मणों ने उठाया। अजातशत्रु बौद्ध मत का शत्रु था। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध श्रावस्ति में रहने लगा। यहां भी प्रसेनजित को उस के बेटे ने गद्दी से उठा दिया; शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में गया।

अजातशत्रु की दुश्मनी बौद्ध मत से धीरे धीरे बहुत कम हो गयी। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध फिर मगध में गया। पटना उस समय एक गांव था। वहां हरकारों की चौकी में ठहरा। वहां से विशाली (१) में गया। विशाली की रानी एक वेश्या थी। वहां से पावा (२) गया; वहां से कुशीनार गया। बौद्धों के लिखने बमूजिब उसी जगह सन् ईस्वी से ५४३ बरस पहले ८० बरस की उमर में साल के वृक्ष के नीचे बाईं करवट लेटे हुए इस का निर्वाण (३) हुआ। काश्यप उस का जानशीन हुआ। अजातशत्रु के पीछे तीन राजा अपने बाप को मार कर मगध की गद्दी पर बैठे, यहां तक कि प्रजा ने घबराकर विशाला की वेश्या के बेटे शिशुनाग मन्त्री को गद्दी पर बैठा दिया। यह बड़ा बुद्धिमान् था। इस के बेटे काल अशोक ने, जिस का नाम ब्राह्मणों ने काकवर्ण भी लिखा है, पटना को अपनी राजधानी बनाया।

(१ जैनी महावीर के समय विशाली अथवा विशाला का राजा चेटक* बतलाते हैं, यह जगह पटने के उत्तर तिरहुत में है, उजड़ गयी है। वहां वाले अब उसे बसहर पुकारते हैं।

(२) जैनी इहां महावीर का निर्वाण बतलाते हैं, पर जिस जगह को अब पावापुर मानते हैं असल में वह नहीं है; पावा विशाली से पश्चिम और गङ्गा से उत्तर होना चाहिए।

(३) जैनी अपने चौबीसवें अर्थात् सब से पिछले तीर्थंकर महावीर का निर्वाण विक्रम के संवत् से ४७० अर्थात् सन् ईस्वी से ५२७ बरस पहले बतलाते हैं और महावीर के निर्वाण से २५० बरस पहले अपने तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण मानते हैं।

---

* कैसे आश्चर्य की बात है, चेटक रंडी के भड़वे को भी कहते हैं (हरिश्चन्द्र)।

जब सिकन्दर का सेनापति बाबिल का बादशाह सिल्यूकस सूबेदारों के तदारुक को आया, पटने से सिन्धु किनारे तक नन्द के बेटे चन्द्रगुप्त के अमल दखल में पाया, बड़ा बहादुर था, शेर ने इस का पसीना चाटा था और जंगली हाथी ने इस के सामने सिर झुका दिया था।

पुराणों में बिम्बसार को शिशुनाग के बेटे काकवर्ण का परपोता बतलाया है और नन्दिवर्द्धन को बिम्बसार के बेटे अजातशत्रु का परपोता और कहा है कि नन्दिवर्द्धन का बेटा महानन्द और महानन्द का बेटा शूद्री से महापद्मनन्द और इसी महापद्मनन्द और उस के आठ लड़कों के बाद, जिन्हें नवनन्द कहते हैं, चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा। बौद्ध कहते हैं कि तक्षशिला के रहनेवाले चाणक्य ब्राह्मण ने धननन्द को मार के चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और वह मोरिया नगर के राजा का लड़का था और उसी जाति का था जिस में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध पैदा हुआ।

मेगास्थिनीज़ लिखता है कि पहाड़ों में शिव और मैदान में विष्णु पुजाते हैं। पुजारी अपने बदन रंग * कर और सिर में फूलों की माला लपेट कर घण्टा और झांझ बजाते हैं। एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की स्त्री व्याह नहीं सकता है और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नहीं कर सकता है। हिन्दू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कन्धों पर कपड़ा † रखते हैं। जूते उन के रङ्ग बरङ्ग के चमकदार और कारचोबी के होते हैं। बदन पर अकसर गहने औ मिहदी से रंगते हैं और दाढ़ी मूछ पर खिजाब करते हैं।

---

* चन्दन इत्यादि लगाकर। † अर्थात् पगड़ी दुपट्टा।

छतरी, सिवाय बड़े आदमियों के, और कोई नहीं लगा सकता। रथों में लड़ाई के समय घोड़े और मंजिल काटने के लिये बैल जोते जाते हैं। हाथियों पर भारी जर्दोज़ी झूल डालते हैं। सड़कों की मरम्मत होती है। पुलिस का अच्छा इन्तिजाम है। चन्द्रगुप्त के लशकर में औसत चोरी तीस रुपये रोज़ से जियादा नहीं सुनी जाती है। राजा जमीन की पैदावार से चौथाई लेता है।

चन्द्रगुप्त सन् ई० के ६१ बरस पहले मरा। उस के बेटे बिन्दुसार के पास यूनानी एलची दयोमेकस (Diamachos) आया था। परन्तु वायुपुराण में उस का नाम भद्रसार और भागवत में वारिसार और मत्स्यपुराण में शायद बृहद्रथ लिखा है। केवल विष्णुपुराण बौद्ध ग्रन्थों के साथ बिन्दु-सार बतलाता है। उस के १६ रानी थीं और उन से १०१ लड़के थे, उन में अशोक * जो पीछे से "धर्म्मअशोक" कहलाया, बहुत तेज था, उज्जैन का नाज़िम था। वहां के एक सेठ † की लड़की देवी उस से व्याही थी, उसी से महेन्द्र लड़का और संघमिता (जिसे सुमित्रा भी कहते हैं) लड़की हुई थी।

---

* जैनियों के ग्रन्थों में इसी का नाम अशोक श्री लिखा है।

† सेठ श्रेष्ठी का अपभ्रंश है, अर्थात् जो सब से बड़ा हो।

शेषपूरण ।

इस लेख के पढ़ने से स्पष्ट होगा कि श्रीमान् भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के सामने ही यह लेख पंडित विनायक शास्त्री जी ने सुनाया था और इसी हेतु उन को इस विषय में स्मरण दे कर मंगवाया है—जो 'चन्द्रबिंब पूरन भये...' दोहे के ऊपर २८ पृष्ठ के नोट पर समझाना चाहिये—

श्री भारतेन्दु का इस उदयपुर में शुभागमन हुआ। उस समय मुद्राराक्षस छप चुका था, केवल उस के विषय में 'क्रूरग्रहः सकेतुः' इस श्लोक पर श्री ६ गुरुवर्य बापूदेव शास्त्री जी का और श्री सुधाकर जी का आशय विचार किया गया था, इस पर यही निम्न लिखित विचार श्री गुरुचरणों का ध्यान करने से हृदय में उपस्थित हुआ सो दूसरे दिन मैं ने श्री भारतेन्दु को सुनाया। उसी क्षण बड़ी प्रसन्नता से उत्तर दिया कि मुद्राराक्षस के द्वितीय संस्करण में तुम्हारा यह विषय अवश्य ही दे दिया जायगा।

इधर हरिश्चन्द्रकला का जन्म हुआ, आप का पत्र भी आया, पर मैं अभागी अनेक कार्यों से व्यग्र नहीं जानता था कि मुद्राराक्षस ही पहिले छपेगा। अस्तु आप अपने पत्र का उत्तर और यह विषय दोनों लीजिये और "कला" के किसी अङ्क में अङ्कित कीजिये।

जिस पर विचार था वह श्लोक यह है :—

> क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीम् ।
> अभिभवितु मिच्छति बलाद्रक्षत्येनन्तु बुधयोगः ॥ १ ॥

इस का अन्वय सहित अर्थ—जो ग्रहण के अर्थ को प्रकाशित करता है। सः क्रूरग्रहः केतुः इदानीं पूर्णमण्डलं चन्द्रमसं बलात् अभिभवितुमिच्छति एनं बुधयोगस्तु रक्षति।

वह क्रूरग्रह केतु इस समय पूरे चन्द्रमा को बलात्कार से ग्रसने चाहता है, सूर्य से बुध का योग रक्षा करता है। आङ् अव्यय मर्यादा वा अभिविधि अर्थ में लेकर उस से इन शब्द से समास "आङ्मर्यादाभिविध्योः" इस सूत्र से करते हैं तब "एनं" बनता है अनाङ्निषेध रहने से "निपात एकाजनाङ्" सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो के प्रकृतिभाव नहीं हो सकता।

यदि कोई कहे कि 'एनं' इदम् वा एतद् शब्द से बना है तो विचारो कि "द्वितीयाटौस्स्वेनः" इस सूत्र से जो इदम् वा एतद् शब्द के स्थान में एन आदेश होता है सो "अन्वादेश ही में होता है। अन्वादेश उसे कहते हैं कि किसी कार्य के लिये उसी का फिर प्रयोग करना पड़े। उदाहरण—अनेन व्याकरणमधीतं एनं छन्दोऽध्यापय। एतयोः पवित्रं कुलं एनयोः प्रभूतं स्वम्। इत्यादि। यहां समस्त श्लोक भर में कहीं इदम् वा एतद् शब्द का प्रयोग नहीं है तो अन्वादेश भी नहीं हुआ। और अन्वादेश नहीं रहने से "एनं" इदम् वा एतद् शब्द का व्याकरणरीति से बन नहीं सकता इस लिये पूर्वोक्त अर्थ करना पड़ा।

बुधानां योगः बुधयोगः इस अर्थ से अधिक बुद्धिमान् बुध, गुरु, शुक्र तीनों का योग सूर्य के रहने से ग्रहण नहीं हो सकता वा ग्रहण का अशुभफल नहीं हो सकता, ऐसा सूत्रधार नटी से कहता है यही अभिप्राय ठीक है।

पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति।

(वाराहीसंहिता राहुचार श्लोक १७)

अर्थ—पांच ग्रहों का संयोग होने से ग्रहण का सम्भव नहीं होता। यहां भी राहु, सूर्य, बुध, गुरु और शुक्र पांच

ग्रहों का संयोग हुआ हो इस लिये ग्रहण का सम्भव नहीं, यह सूत्रधार का तात्पर्य होगा।

अथवा। वाराही संहिता राहुचार श्लोक ६२ देखो।

यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा।
सुरपतिगुरुणावलोकिते तच्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः।

अर्थ—जो ग्रहजनित अशुभफलदृष्टि के वश से ग्रहण और मोक्ष समय में कहा वह बृहस्पति की दृष्टि होनें से शान्त हो जाता है, जैसे सुलगा हुआ अग्नि जल से शान्त होता है। यहां भी उक्त अर्थ से बृहस्पति की दृष्टि है, अतः अशुभफल नहीं हो सकता। यह सूत्रधार का तात्पर्य होगा ऐसा भी कह सकते हैं।

उसी श्लोक का अन्वय सहित अर्थ जो चन्द्रगुप्त के अर्थ को प्रकाश कर के चाणक्य के प्रवेश की प्रस्तावना करता है। इदानीं सकेतुः क्रूरग्रहः असम्पूर्णमंडलं चन्द्रं बलात् अभिभवतुमिच्छति एनं बुध योगस्तु रक्षति। इस समय केतु (मलयकेतु) सहित क्रूरग्रह (राक्षस) जिस का मण्डल (राज्य) पूरा नहीं हुआ है उस चन्द्र (चन्द्रगुप्त) को बलात्कार से पराजय करने चाहता है, प्रभु तक बुद्धिमानों का (गुप्त पुरुष जो चाणक्य के भेजे थे उन का) योग तो रक्षा करता है। एनं शब्द की सिद्धि पूर्वप्रकार से ही जानो, केवल भेद इतना ही है कि पहले अर्थ में इन शब्द से सूर्य और दूसरे अर्थ में प्रभु (राजा वा बड़े लोक) लेते हैं। "इनः सूर्ये प्रभौ" नानार्थवर्ग अमरकोष में लिखा भी है।

सारांश इस लिखित अर्थ पर सर्वलोक विचार कर के फिर उस के गुण दोषों पर ध्यान देवें इतनी ही प्रार्थना है।"

इति शुभम्॥

उदयपुर }
१८ नवम्बर }

विनायक शास्त्री।

केतुवर्णन।

कविवचनसुधा जिल्द १२ नंबर ४६—१८—७—८१.

प्राचीन भारतवर्षीय सिद्धान्तज्ञों का केतु सम्बन्धी विचार।

जो अकस्मात् अग्नि सदृश आकाश में देख पड़े उसे केतु कहते हैं, परन्तु खद्योतादि से भिन्न हो। ये केतु तीन प्रकार के होते हैं—दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम। जिन की स्थिति भूवायु से ऊपर है वे दिव्य, जिन के रूप घोड़े हाथी ध्वज वृक्षादि के सदृश होते हैं, अर्थात् जो भूवायु से उत्पन्न होते हैं वे आन्तरिक्ष और इन से भिन्न भौम हैं।

बहुत विद्वान् कहते हैं कि एक सौ एक केतु हैं, कितने कहते हैं कि हजार केतु हैं, परन्तु नारद मुनि कहते हैं कि यह एक ही केतु है अनेक रूप और स्थान बदल बदल कर दर्शन देता है।

तीन पक्ष के अनन्तर जितने दिनों तक केतुओं का दर्शन होता है उतने मास तक इन का फल होता है और जितने मास तक दर्शन होता है उतने वर्ष तक फल होता है। प्राचीनों ने इन केतुओं के रङ्ग, रूप और उदयास्त पर से संज्ञा विशेष और उन पर से शुभाशुभ ज्ञान जैसा किया है उसे हम संक्षेप से लिखते हैं। जिन केतुओं की चोटी सुवर्ण और मणि के सदृश हो और पूरब पश्चिम दोनों दिशाओं में उदय हों वे रविपुत्र कहलाते हैं और इन के उदय से राजाओं में परस्पर विरोध होता है ऐसे पच्चीस केतु हैं। जो अग्नि दिशा में उदय होते हैं और जिन का रङ्ग लाल होता है वे अग्निपुत्र हैं, उन के उदय से संसार में भय होता है, उन की संख्या भी पच्चीस ही है।

जिन की चोटी टेढ़ी और काली हो ऐसे केतु भी पच्चीस हैं। ये दक्षिणदिशा में उदय होते हैं, इन के उदय से मनुष्य बहुत मरते हैं, इन को मृत्युपुत्र कहते हैं। बाइस केतु ऐसे हैं जिन को चोटी नहीं होती और उन का आकार दर्पण सा चिपटा और गोल होता है। रंग जल में पड़ा हुआ तैल के सदृश जान पड़ता है। ये ईशान कोण में उदय होते हैं। इन के उदय से भी भय उत्पन्न होता है और इन को मङ्गलभ्रातृ कहते हैं। तीन केतु चंद्रपुत्र हैं, इन का रूप चान्दी ऐसा श्वेत होता है, ये उत्तर दिशा में देख पड़ते हैं, इन का दर्शन सुभिक्षकारक है। एक केतु ब्रह्मपुत्र है। इस को तीन चोटी होती है और तीनों तीन रंग की। इस के उदय की दिशा का नियम नहीं, यह युगान्त में उदय होता है।

चौरासी शुक्रपुत्र हैं। इन का तारा शुक्ल और बड़ा होता है और इन का उत्तर और ईशान में उदय होता है और तीव्र फल है। साठ शनैश्चर के पुत्र हैं। इन को दो चोटी होती हैं, आकाश में सर्वत्र इन का उदय होता है और नाम कनक है, ये अतिकष्टद हैं।

गुरु के पुत्र विकच नाम के पैंसठ हैं, इन को चोटी नहीं होती, याम्य दिशा में उदय होते हैं, बुरे फल देते हैं। तस्कर नाम के एकयावन बुध के पुत्र हैं, ये स्पष्ट दिखाई नहीं देते और लंबे और श्वेत होते हैं, सब दिशाओं में इन का उदय होता है, ये भी बुरे फल देनेवाले हैं। तीन चोटी के कौंकुम नाम के मंगल के पुत्र साठ केतु हैं, ये उत्तर दिशा में उदय होते हैं और बुरे हैं, तेंतीस राहुपुत्र तामसकीलक नाम के हैं। ये रवि चन्द्रमा के साथ देख पड़ते हैं, इन का फल रविचार के आधीन है। एक सौ बीस अग्नि के पुत्र विश्वरूप नाम के हैं, ये अग्निबाधा करनेवाले हैं।

जिन की चोटी चामर ऐसी और कृष्ण रक्त वर्ण की होती है वे वायुपुत्र हैं और उन का अरुण नाम है। ये पाप फल देनेवाले हैं और इन की संख्या सतहत्तर है। बहुत तारावाले प्रजापति के आठ पुत्र गणक नाम के हैं और दो से चार ब्रह्मसन्तान चतुर्भुजाकार हैं। बत्तीस वरुण के पुत्र कङ्का नाम के हैं, इन में चन्द्रमा ऐसी कान्ति रहती है, ये केतु बहुत तीव्र फल को देनेवाले हैं, इन का रूप बांस के वृक्षसदृश होता है। छानवे काल के पुत्र हैं, इन का कबंध नाम है, रूप भी कबंध ऐसा होता है, बड़े घोर दारुण फल के देनेवाले हैं। नव केतु केवल विदिशा में उदय होते हैं, इन का बड़ा और श्वेत तारा होता है। इस प्रकार से हजार केतु का फल गर्ग, पराशर और असित देवलादिकों ने कहा है। अब इन से विशेष केतुओं का फल नीचे लिखते हैं :—

जिस केतु का उदय पश्चिम भाग में हो और उत्तर भाग में फैला हो, मूर्त्ति चिकनी हो, तो उसे वसा केतु कहते हैं, यह तुरन्त ही मरकी करता है, परन्तु इस के उदय से सुभिक्ष बहुत होता है।

उसी लक्षण के अस्थिकेतु और शस्त्रकेतु भी होते हैं, परन्तु पहिला रूक्ष और दूसरा पूर्व में उदय होता है, पहिला भयप्रद और दूसरा महामारीकारक है।

जो केतु अमावस्या में उदय होता है और उस की चोटी में धूम रहता है उसे कपालकेतु कहते हैं। यह मरकी अवर्षण और रोगकारक है और यह आकाश के आधेही में रहता है।

इसी प्रकार का रौद्र नामक केतु है। इस की चोटी नोकीली और ताम्रवर्ण की होती है, यह आकाश के त्रिभाग

ही में चलता है। चल केतु उसे कहते हैं जिस की चोटी का अग्र दक्षिण ओर और उंचाई एक अंगुल हो और ज्यों ज्यों उत्तर की ओर चले त्यों त्यों बढ़ता जाय, सप्तऋषि अभिजित और ध्रुव को स्पर्श कर फिर लौट कर दक्षिण भाग में अस्त हो और आधे ही आकाश में रहे। यह केतु प्रयाग से लेकर अवन्ती पुष्करारण्य और उत्तर में देविका-नद तक मध्यदेश और अन्य अन्य देशों में भी रोग, दुर्भिक्ष से प्रजा को दुःख देता है, इस का फल कोई दश मास तक और कोई अठारह मास तक कहता है।

श्वेत और कनाम का केतु ये दोनों साथ ही सात दिन तक देख पड़ते हैं, इन का अग्र याम्यभाग में रहता है और अर्द्धरात्र के पूर्व ही इन का दर्शन होता है, ये दोनों सुभिक्ष और कल्याण के देनेवाले हैं।

इन में यदि केवल केतु का दर्शन हो तो दश वर्ष तक संसार में महाताप और शस्त्रकोप रहता है। श्वेत केतु जो जटाकार होता है, यदि रूक्ष हो, आकाश के त्रिभाग में रहे और लौट कर बायें ओर से आवे तो केवल तृतीयांश प्रजा बचै और सब का नाश हो।

कृत्तिका नक्षत्र में स्थित हो कर जिस केतु का उदय हो उसे रश्मिकेतु कहते हैं, इस की चोटी में धूंआ रहता है, इस का फल श्वेत केतु के समान है।

ध्रुवकेतु का प्रमाण, वर्ण, आकृति इत्यादि नियत नहीं होते और दिव्य, आन्तरिक्ष, भौम ये तीनों भेद उस में पाये जाते हैं, यह अच्छा फल देनेवाला है।

राजाओं की सेना और महलों के ऊपर, वृक्ष पहाड़ और

ग्रहों के ऊपर यह ध्रुवकेतु उन का नाश करने के लिये अकस्मात् दर्शन देता है।

कुमुद केतु की श्वेत कुमुद ऐसी कान्ति होती है, पश्चिम में उदय और पूर्व ओर चोटी रहती है, एक ही रात्रि देख पड़ता है, यह दश वर्ष तक सुभिक्ष करता है।

मणिकेतु की चोटी दूध ऐसी और सीधी होती है, तारा बहुत सूक्ष्म रहता है, पश्चिम भाग में केवल एक ही दिन प्रहर तक देख पड़ता है। यह साढ़े चार मास तक सुभिक्ष और क्षुद्र जन्तुओं की उत्पत्ति करता है। जलकेतु पश्चिम ओर देख पड़ता और चोटी भी पश्चिम भाग में रहती है, रूप स्वच्छ होता है। यह नव मास तक सुभिक्ष और प्राणियों को शान्त रखता है।

भवकेतु एक रात्रि के पूर्व भाग में देख पड़ता है। उस की चोटी सिंह के पुच्छ ऐसी दक्षिण से घूमी हुई होती है। यह जै मुहूर्त्त रात्रि में देख पड़ता है, उतने मास तक सुभिक्ष करता है, परन्तु यदि रूक्ष हो तो प्राणियों का नाश करता है।

पद्मकेतु कमल के मृणाल ऐसा उज्ज्वल होता है और पश्चिम दिशा में एक ही रात्रि देख पड़ता है। यह सात वर्ष तक सुभिक्ष करता है।

आवर्त्तकेतु पश्चिम भाग में आधी रात को देख पड़ता है, इस की चोटी लाल और बांई ओर को रहती है। यह जै मुहूर्त्त रात्रि में देख पड़ता है उतने ही मास सुभिक्ष करता है।

सम्वर्त्तकेतु पश्चिम भाग में सन्ध्या काल में उदय होता है और आकाश के तृतीयांश तक फैला रहता है, इस की

चोटी धूमसहित ताम्रवर्ण की होती है और उस का अग्र शूल ऐसा जान पड़ता है। यह जै मुहूर्त्त देख पड़ता है उतने वर्ष शस्त्रों के आघात से अनेक राजाओं का नाश करता है और जिस नक्षत्र पर उदय होता है उसे भी दुःख देता है।

बुरे केतुओं का अश्विन्यादि नक्षत्रों में उदय होने के क्रम।

अश्मकपति। किरातराज। कलिङ्गपति। शूरसेनपति। उशीनरपति। जलजजीवपति। अश्मकपति। मगधपति। अशिकपति। अङ्गपति। पाण्ड्यपति। उज्जयिनीपति। दण्डकपति। कुरुक्षेत्रपति। काश्मीरपति। कम्बोजपति। इक्ष्वाकुपति। रलकपति। पुंड्रपति। सार्वभौम। अंध्रपति। भद्रवपति। काशीपति। चैद्यादिपति। केकयपति। पञ्चनद-पति। सिंहलपति। अगपति। नैमिषपति। किरातपति। इन राजाओं का मरण होता है, परन्तु यदि केतु की चोटी उल्कादिकों से चोट खाय तो इन राजाओं का कल्याण और चौल, अवगाण, सित, हूण, चीन इन देशों के राजाओं का नाश हो।

केतु को यूरप के लोग भी कुछ विशिष्ट फलकारक मानते हैं, परन्तु कुछ इन का पक्का विश्वास नहीं करते। यह एक प्रकार का तारा है, जिस की गति का यथार्थ निर्णय नहीं होता और इस की बहुत जाति हैं; कितने एक बार देख पड़ते फिर लौट कर नहीं आते। इस से यह जान पड़ता है कि इन की कक्षा को यूरप के लोग Parabola कहते हैं और हम ने इस का नाम परवलय रक्खा है। बहुत से केतु फिर लौट कर आते हैं, इसी लिए उन को

क्षा सीमित है अर्थात बंधी है, इस कक्षा को दीर्घवृत्त कहते हैं जिस के नाभी और केन्द्र में बहुत अन्तर होता है।

कितने केतु दो चार बार तो नियत काल पर लौट कर आते हैं, फिर नहीं आते। इस से यह अनुमान होता है कि या तो वे केतु नष्ट हो गये अथवा उन की कक्षा बदल गयी। इन बातों से यही सिद्ध होता है कि इन के कक्षादिकों का प्रमाण यथार्थ अभी तक किसी के ध्यान में नहीं आया। इसी लिये बराहमिहिर ने लिखा है कि 'दर्शनमस्तो वा गणितविधिनाऽस्य शक्यते नैव ज्ञातुम्" अर्थात् केतुओं के उदय और अस्त गणित से नहीं जाने जाते।

इस केतु को कई एक विद्वानों ने हिन्दी में "पुच्छल तारा" वा दुमदार सितारा कहा है, परन्तु प्राचीन लोगों के मत से वह केतु की शिखा अर्थात् चोटी है, जिसे नये लोग पूंछ कहते हैं, इस लिए हमारी समझ में तारा पद के विशेषण में पुच्छ के बदले शिखा अर्थात् चोटी का विशेषण देना चाहिए।

बांकीपुर—"खड्गविलास" प्रेस में बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित।